संतशिरोमणि सद्गुरु कबीर की विवेकधारा से अनुप्राणित

पारख प्रकाश

वर्ष 51

अप्रैल-मई-जून
2022

अंक 4

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

प्रवर्तक
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब
श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा
पोस्ट—मद्दोबाजार
जिला—गोंडा, उ०प्र०

आदि संपादक
सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

संपादक
धर्मेन्द्र दास

आदि व्यवस्थापक
प्रेम प्रकाश

मुद्रक एवं प्रकाशक
गुरुभूषण दास
पारख प्रकाश इंटरनेट पर
www.kabirparakh.com

वार्षिक शुल्क : 50.00
एक प्रति : 13.00
आजीवन सदस्यता शुल्क
1250.00

विषय-सूची

	लेखक	पृष्ठ
कविता		
मन तू मान शब्द उपदेशा	सद्गुरु कबीर	1
आओ धर्म की कुछ बातें कर लें	हेमंत हरिलाल साहू	16
गजल	श्री रमेशचन्द्र शर्मा 'चन्द्र'	23
दुनिया में वही सन्त महान	जितेन्द्र दास	26
आत्मार्पण	श्री बालकृष्ण प्रसाद	48

स्तंभ

पारख प्रकाश / 2 व्यवहार वीथी / 13 परमार्थ पथ / 19
बीजक चिंतन / 24

लेख		
सफल जीवन के सूत्र	विवेक दास	7
स्वप्न के परिप्रेक्ष्य में		9
मन की भूख कैसे मिटेगी?	धर्मेन्द्र दास	27
सुखी जीवन की चाबी	गुरुवेन्द्र दास	32
मोक्ष	श्री भावसिंह हिरवाना	38
मन में दुख न होना ही ध्यान ह		40
कहानी		
स्नेहिल प्रेम	दीनेन्द्र दास	17
प्रेम की जीत	श्री श्यामल बिहारी महता	21

शीघ्र प्रकाश्य

धरती पर स्वर्ग

लेखक—सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी

जीवन में किसने क्या पाया और क्या खोया इसका कोई महत्त्व नहीं है, महत्त्व है किसका मन कैसा है। मन सुलझा हुआ शांत-संतुष्ट है तो हर जगह सुख-ही-सुख, आनंद-ही-आनंद है और यदि मन उलझा हुआ अशांत-असंतुष्ट है तो हर जगह दुख-ही-दुख है। मन ही स्वर्ग बनाता है और मन ही नरक बनाता है। यदि लोग प्राणिमात्र के प्रति देवत्व-बुद्धि एवं भगवद् भावना रखकर एक-दूसरे के साथ प्रेम-सेवा, करुणा-समता का तथा सबके साथ सत्यता एवं ईमानदारीपूर्वक व्यवहार करने लग जायें तो यह धरती स्वर्गमय ही नहीं अपितु साक्षात स्वर्ग बन जायेगी। प्रस्तुत पुस्तक 'धरती पर स्वर्ग' परमपूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा विभिन्न जगहों पर विभिन्न समयों पर दिये गये प्रवचनों का संकलन है।

कबीर दर्शन—*(ग्यारहवां संस्करण)*—सद्गुरु कबीर के जीवन, दर्शन, कर्तृत्व एवं व्यक्तित्व को समझने के लिए एक मानक ग्रंथ। इसके प्रथम अध्याय बीजक मंथन में कबीर साहेब की मौलिक वाणी 'बीजक' के आधार पर पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक विषयों का विशद विवेचन तथा अनेक शंकाओं का समाधान है। दूसरे अध्याय में पारखी संतों का इतिहास तथा ग्रंथ परिचय है। तीसरे अध्याय में पारख सिद्धांत का तात्त्विक एवं वैज्ञानिक चित्रण है। चौथे अध्याय में कबीर दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन है। पांचवें अध्याय में कबीर तथा कबीरपंथ से प्रभावित संतों का परिचय है। छठवें अध्याय में कबीरपंथ का इतिहास है तथा सातवें अध्याय उपसंहार में समन्वयात्मक रूप में सत्य तथा जीवन के अंतिम लक्ष्य का सारगर्भित चित्रण है। कबीर साहेब पर शोध करने वाले तथा सामान्य लोगों के लिए यह अनुपम ग्रंथ है। पृष्ठ 783, मूल्य 230 रु.।

बीजक : पारख प्रबोधिनी व्याख्या—*(प्रथम खण्ड : तेइसवां संस्करण, द्वितीय खण्ड : इक्कीसवां संस्करण)*—बीजक सद्गुरु कबीर की सर्वथा मौलिक एवं सर्वाधिक प्रामाणिक रचना है। मानव-जीवन के सरल व्यावहारिक पक्षों के साथ अध्यात्म और दर्शन के गूढ़ पक्षों का इसमें बहुत ही सरल, सहज तथा सटीक चित्रण किया गया है। समाज, व्यवहार, धर्म, दर्शन तथा परमार्थ की बहुत सारी शंकाओं का समाधान इसमें बहुत ही सुंदर ढंग से हुआ है। सद्गुरु कबीर ने जिस निर्भीकता के साथ मूल पद कहा है उसी निर्भीकता के साथ उसकी व्याख्या भी इस पारख प्रबोधिनी व्याख्या में की गई है। तर्कयुक्त चिंतन तथा अनेक ऐतिहासिक तथ्यों एवं साक्ष्यों के कारण वर्ण्य विषय अत्यंत सजीव बन गया है। प्रथम खण्ड, पृष्ठ 992, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ 960, मूल्य—प्रथम खण्ड 275 रु., द्वितीय खण्ड 275 रु.।

विशेष ध्यान शिविर

कबीर पारख संस्थान, प्रयागराज के तत्त्वावधान में निम्न स्थलों पर निम्नांकित तिथियों पर विशेष ध्यान शिविर का आयोजन किया जा रहा है—

25 मई से 29 मई, 2022	:	श्री कबीर पारख आश्रम, धरमपुरी (डभोई), वडोदरा, गुजरात सम्पर्क : 09427849332
1 जून से 5 जून, 2022	:	श्री कबीर पारख आश्रम, ग्रा.पो.–सणिया हेमाद, सूरत, गुजरात सम्पर्क : 09427153838, 09428868484
1 अगस्त से 7 अगस्त, 2022	:	श्री कबीर संस्थान, नवापारा (राजिम), रायपुर, छत्तीसगढ़ सम्पर्क : 09165283688, 06263782235
17 अगस्त से 24 सितंबर, 2022	:	कबीर पारख संस्थान, प्रीतमनगर, प्रयागराज सम्पर्क : 09451369965, 09451059832

उक्त ध्यान शिविरों में सीमित साधकों के लिए ही व्यवस्था रहेगी। अतः कोई भी साधक किसी भी शिविर में बिना पूर्व अनुमति के न आवें। जो साधक जहां के शिविर में भाग लेना चाहें, वहां के पते पर ही संपर्क करें, अन्य स्थल पर नहीं। जो साधक ध्यान शिविर के दौरान पूर्ण मौन पालन कर सकें तथा पूरी अवधि तक रुक सकें वे ही भाग लें। ध्यान शिविर में भाग लेने वालों का शहर, बाजार जाना वर्जित रहेगा।

R.N.I.'s Regd. No. 18528/71 Postal Regd. No. A.D. 253/2000

फार्म-4

'पारख प्रकाश' त्रैमासिक पत्र के संबंध में विवरण

1.	प्रकाशन स्थल	प्रीतम नगर, प्रयागराज-211011	
2.	प्रकाशन अवधि	त्रैमासिक	
3-4.	मुद्रक/प्रकाशक का नाम	गुरुभूषण दास	
	राष्ट्रगत संबंध	भारतीय	
	पता	प्रीतम नगर, प्रयागराज-211011	
5.	संपादक का नाम	धर्मेन्द्र दास	
	राष्ट्रगत संबंध	भारतीय	
	पता	प्रीतम नगर, प्रयागराज-211011	
6.	समस्त पूंजी का स्वामी	: कबीर पारख संस्थान	
	राष्ट्रगत संबंध	पंजीकृत सोसायटी	
	पता	प्रीतम नगर, प्रयागराज	

मैं गुरुभूषण दास एतद्द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर लिखी बातें पूर्णतया सत्य हैं।

दिनांक : 1-4-2022

(कबीर पारख संस्थान के लिए)
गुरुभूषण दास
प्रकाशक

निवेदन

1. पारख प्रकाश प्रतिवर्ष जनवरी, अप्रैल, जुलाई एवं अक्टूबर में प्रकाशित होता है। यदि इन महीनों की आखिरी तारीख तक आपको अंक न मिले, तो इसकी शिकायत अवश्य भेजें, ताकि आपको दूसरी प्रति भेजी जा सके। देर से शिकायत मिलने पर दूसरी प्रति भेजने में हमें काफी असुविधा होती है।

2. आशा है यह पत्रिका आपके लिए रुचिकर, ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायी सिद्ध हुई होगी तथा आगे भी आप इसके ग्राहक बने रहना पसन्द करेंगे और दूसरों को भी इसके ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करेंगे। इसे अधिक स्थायी तथा नियमित बनाने के लिए आप स्वयं इसके आजीवन ग्राहक तो बनें ही दूसरों को भी आजीवन ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करें।

3. यदि आपका शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो रहा है तो अगले अंक के लिए अपना शुल्क यथाशीघ्र भेज दें, जिससे अगला अंक आपको समय से मिल सके। पत्र तथा शुल्क भेजते समय अपना ग्राहक नं0 अवश्य लिखें।

एक प्रति 13 रुपये | वार्षिक 50 रुपये | आजीवन 1250 रुपये

लेख, कविता, सदस्यता-शुल्क भेजने तथा सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता

पारख प्रकाश
संत कबीर मार्ग, प्रीतमनगर
प्रयागराज-211011 (उ. प्र.)
फोन : 9451369965, 9451059832
Vist us : www.kabirparakh.com
E-mail : kabirparakh@yahoo. com

ग्राहक नं०

कबीर पारख संस्थान के लिए गुरुभूषण दास द्वारा प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस, प्रा. लि., पन्नालाल रोड, प्रयागराज से मुद्रित

सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,
एक जिमी पर रहिये
—सन्त कबीर

ज्ञानी ज्ञाता बहु मिले, पण्डित कवी अनेक ।
राम रता इन्द्रिय जिता, कोटी मध्ये एक ॥ कबीर साखी॥

वर्ष 51] प्रयागराज, चैत्र, वि. सं. 2079, अप्रैल 2022, सत्कबीराब्द 623 [अंक 4

मन तू मान शब्द उपदेशा ।

सार शब्द औ गुरुमुख बानी, ताको गहो संदेसा ॥टेक॥
जाहि तत्त्व को मुनिवर खोजै, ब्रह्मादिक सो ग्यानी ।
सोई तत्त्व गुरु चरनन लागे, भक्ति हेत कर प्रानी ॥ 1 ॥
प्रथमे दया दीनता आवे, हाँसी मिथ्या त्यागी ।
आतम चीन्ह परातम जाने, सदा रहे अनुरागी ॥ 2 ॥
सब्दप्रतीत औ सब्दकसौटी, निसदिन बिरह बिरागी ।
जहँ को अर्थ तहाँ लो बूझै, जहँ लागी तहँ लागी ॥ 3 ॥
कहैं कबीर यह तत जो बूझै, मानै सीख हमारी ।
काल दुकाल तहाँ नहिं ब्यापै, सदा करौं रखवारी ॥ 4 ॥

× × ×

दया बिनु जोग ओ जग्य जप तप करे, दया बिनु पण्डित पुस्तक पढ़ावै ।
दया बिनु धर्म व्यापार कासो लहे, दया बिनु नाम हृदया न आवै ॥
दया बिनु व्रत एकादशी निर्जला, दया बिनु तीर्थ सब भ्रम आवे ।
दया बिनु वेद मुख अग्र चारों पढ़े, दया बिनु तीर्थ सुरत श्रोता न पावे ॥
कहैं कबीर चल दया के महल में, जहाँ के गये फिर नाहिं आवै ॥

पारख प्रकाश

ज्ञान और ध्यान

ज्ञान की विशेषता एवं महिमा का बखान करते हुए गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं—न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। अर्थात दुनिया में ज्ञान के समान पवित्र और कुछ भी नहीं है। यह भी कहा गया है—ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः अर्थात ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं हो सकती।

यदि ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं हो सकती तो ज्ञान क्या है और ज्ञानी कौन है? क्या अनेक वेद-शास्त्रों को कण्ठस्थ कर लेना और अनेक विषयों को जान लेना ज्ञान है और ऐसा कर लेने वाला ज्ञानी है? जानना ज्ञान नहीं, जानकारी है और अनेक विषयों की जानकारी रखने वाला विद्वान है। ज्ञान है तथ्य-बोध। जो जैसा है उसको वैसा निर्भ्रान्त जान-समझ लेना ज्ञान है और उस ज्ञान को जीवन-आचरण में उतार लेने वाला, ज्ञान के अनुसार जीवन जीने वाला ज्ञानी है। विद्वान भ्रमित और चरित्र-भ्रष्ट हो सकता है, ज्ञानी नहीं। प्रत्यक्ष देखा जा सकता है कि बड़े-बड़े विद्वान, यहां तक अनेक शास्त्रों के ज्ञाता, भ्रम-कल्पना एवं अंधविश्वास के दलदल में आकण्ठ डूबे हुए हैं और उनके जीवन-आचरण-चरित्र का कोई ठिकाना ही नहीं है, परन्तु ज्ञानी के मन में कोई भ्रम-कल्पना-अंधविश्वास नहीं रह जाता, क्योंकि उसे वस्तु-तथ्य का निर्भ्रान्त बोध रहता है, उसके मन से अज्ञान-आवरण पूर्णतः छंट गया होता है और साथ ही उसका जीवन आचरण शुद्ध, संयत एवं पवित्र होने से उसका चरित्र उज्ज्वल एवं निष्कलंक होता है।

यों तो संतों ने तथा शास्त्रों में ज्ञानियों के अनेक लक्षण बताये हैं, परन्तु नीचे कबीर-वाणी तथा महाभारत दोनों में से सच्चे ज्ञानी के एक-एक लक्षण उद्धृत किये जा रहे हैं।

सद्गुरु कबीर कहते हैं—

है कोई गुरु ज्ञानी, जगत उलटि वेद बूझे।

कबीर साहेब एक सभा में पहुंचकर वहां बैठे लोगों से पूछते हैं कि इस सभा में क्या कोई ऐसा श्रेष्ठ ज्ञानी है जो जगत-सांसारिकता-प्रपंच से लौटकर वेद अर्थात आत्मतत्त्व को समझता हो। अर्थ है जो दुनियवी मोह-माया, राग-द्वेष, अहंता-ममता से ऊपर उठकर आत्म तत्त्व को समझता है, जिसे अपने आत्मस्वरूप का निर्भ्रान्त बोध है, वही ज्ञानी है।

महाभारतकार कहते हैं—

पठकाः पाठकाश्चैव चान्ये शास्त्र विचिन्तकाः।

सर्वे व्यसनिनो मूर्खाः यः कियावान् स पण्डिताः ॥

अर्थात—पढ़ने वाले, पढ़ाने वाले तथा अनेक शास्त्रों के मनन-चिंतन करने वाले सभी व्यसनी और मूर्ख हैं। जो क्रियावान, आचरणसंपन्न, चरित्रवान है वही पंडित अर्थात ज्ञानी है।

कोरा शास्त्रज्ञान ज्ञान नहीं है और न बहुत पढ़-लिख लेना ज्ञान है, किन्तु वस्तु तथ्य का यथार्थ बोध होना, अपने आत्मस्वरूप का निर्भ्रान्त बोध होना और उस बोध के अनुसार जीवन आचरण होना ज्ञान है। मैत्रेय उपनिषद् में ज्ञान और ध्यान का स्वरूप बताते हुए कहा गया है—

अभेद दर्शनं ज्ञानं ध्यानं निर्विषयं मनः।

स्नान मनोमलं त्यागं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥

अर्थात—अभेद दर्शन होना ज्ञान है, मन का निर्विषय-निर्विचार का हो जाना ध्यान है, मन के मल-विकार का त्याग स्नान है और इंद्रियों का निग्रहीत-संयमित हो जाना पवित्रता है।

अभेद-दर्शन ज्ञान है। अभेद दर्शन का अर्थ आत्म-अनात्म, जड़-चेतन एवं स्व-पर का भेद मिटाकर सबको एक मान लेना नहीं है, क्योंकि आत्म कभी अनात्म नहीं हो सकता और अनात्म कभी आत्म नहीं हो सकता। इसी प्रकार जड़ कभी चेतन नहीं हो सकता और चेतन कभी जड़ नहीं हो सकता। यद्यपि सत्ता एवं

अस्तित्व की दृष्टि से आत्म-अनात्म, जड़-चेतन दोनों अनादि-अनंत हैं, परंतु दोनों के गुण-धर्म सर्वथा भिन्न-भिन्न हैं। अनात्म-जड़ विकारी-परिवर्तनशील हैं और आत्म-चेतन निर्विकार-एकरस-अपरिवर्तित है तब दोनों एक कैसे हो सकते हैं। आत्म-चेतन कभी 'पर' नहीं हो सकता और अनात्म-जड़ कभी 'स्व' नहीं हो सकता।

अभेद दर्शन का अर्थ है मैं और मेरा लक्ष्य, मैं और मेरा प्राप्तव्य, मेरी मंजिल, मैं और मेरा ईश्वर, परमात्मा, ब्रह्म, मोक्ष मुझसे अलग नहीं किन्तु मेरा अपना आपा है, मैं ही हूं। मुझे अलग बाहर से ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा, मोक्ष, कल्याण पाना नहीं है, किन्तु नित्य प्राप्त है, वह मैं ही हूं। नाम चाहे जो रख लिया जाये जो बाहर से प्राप्त होगा वह एक दिन अवश्य छूट जायेगा। उससे मेरा कभी स्थायी नित्य का संबंध नहीं हो सकता। मेरा नित्य का स्थायी संबंध तो मुझसे ही है। मैं से मैं कभी अलग हो नहीं सकता। मैं ही मेरा ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा, मोक्ष हूं एवं मैं ही मेरी मंजिल हूं, इस प्रकार का निर्भ्रान्त बोध हो जाना, मन का सारा भ्रम मिट जाना ही अभेद दर्शन होना है।

मैं और मेरा लक्ष्य, मैं और मेरा प्राप्तव्य, मैं और मेरा परमात्मा, मेरा ब्रह्म मुझसे अलग नहीं है, किन्तु मेरा अपना आपा, मैं ही हूं इस प्रकार जब तक यथार्थ बोध नहीं हो जाता और इस बोध में मन टिक नहीं जाता तब तक न मन का भ्रम मिट सकता है और न भटकाव दूर हो सकता है। प्रत्यक्ष देखा जा रहा है कि आत्म अस्तित्व का यथार्थ बोध न होने के कारण सामान्य गृहस्थ ही नहीं बड़े-बड़े विद्वान, त्यागी-तपस्वी, संयमी-सदाचारी विरक्त साधु-संन्यासी भी ईश्वर-ब्रह्म-परमात्मा को बाहर से पाने के लिए या उससे मिलने, उसके दर्शन करने के लिए न मालूम कहां-कहां भटक रहे हैं और न जाने क्या-क्या कर रहे हैं, क्योंकि उन्हें यह पक्का निश्चय या भ्रम है कि ईश्वर-ब्रह्म-परमात्मा हमसे दूर कहीं अलग है और उससे मिलकर उसके दर्शन पाकर ही हम कृतार्थ हो सकते हैं, हमारा जन्म-मरण का चक्कर मिट सकता है। जो अपने लक्ष्य को अपने से अलग मानता है उसे कभी भी पूर्ण आत्मिक संतोष एवं आत्मिकतृप्ति का अनुभव हो नहीं सकता, क्योंकि जो अपने से अलग है उससे दूरी बनी ही रहेगी। जो यह समझता है कि मैं और मेरा लक्ष्य, मेरा प्राप्तव्य परमात्मा मुझसे अलग नहीं है उसके मन में न कोई भ्रम रह जाता है और न जीवन में कोई भटकाव रह जाता है, इसलिए वह सदैव आत्मतुष्ट, आत्मतृप्त रहता है।

जीव जिसे पाकर तृप्त होना चाहता है वह तो उसका अपना स्वरूप ही है। उसे पाना नहीं है, किन्तु वह नित्य प्राप्त है। इसलिए उसे बाहर से कुछ पाने की इच्छा नहीं करना है, किन्तु आत्मभिन्न बाह्य प्राणी-पदार्थों, नाम-रूप के प्रति जो अहंता-ममता बनी हुई है केवल उसका त्याग करना है, उनसे अपने मन को हटा लेना है। और अन्य प्राणियों-मनुष्यों को अपना सजातीय समझकर उनके प्रति दया का भाव रखकर उनके साथ प्रेमपूर्वक मित्रवत व्यवहार करना है। इसी के लिए श्री रामरहस साहेब कहते हैं—

प्राप्त जीव इच्छा नहीं, केवल हंत छुड़ाव।
निज स्वरूप लखि दयायुत, दीन जानि अपनाव ॥

(पंचग्रंथी)

अपने और अपने लक्ष्य, अपने और अपने प्राप्तव्य या कहें कि जीव और शिव की एकता का, अभेदत्व का जब तक यथार्थ बोध नहीं होगा और इस बोध में दृढ़ निश्चयता नहीं होगी तब तक कोई चाहे कुछ भी कर ले उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। जीव और शिव की एकता या आत्मा और परमात्मा की एकता का अर्थ है जीव ही शिव है और आत्मा ही परमात्मा है। स्वामी शंकराचार्य कहते हैं—

वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान् कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवताः !
आत्मैक्यबोधेन बिना विमुक्तिर्न सिध्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि ॥

(विवेक चूड़ामणि, 6)

अर्थात कोई चाहे शास्त्रों का व्याख्यान करे, देवताओं के नाम पर यज्ञ-हवन करे, नाना प्रकार के कर्मकांड-पूजा-पाठ करे, देवताओं की प्रार्थना करे और

यह सब सौ ब्रह्मा के काल (31,10,40,000000000 इकतीस नील, दस खरब, चालीस अरब वर्ष) तक करता रहे, परन्तु उसकी मुक्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता का, अभेदत्व का ज्ञान होकर वह अपनी आत्मा में एकता स्थापित न कर ले।

सद्गुरु कबीर कहते हैं—शशा शर नहिं देखै कोई। शर शीतलता एकै होई। अर्थात पानी-जल को कोई नहीं देखता कि जल और उसकी शीतलता एक ही है। उसी प्रकार लोग यह नहीं समझते या समझने का प्रयास नहीं करते कि आत्मा और परमात्मा, जीव और शिव दो नहीं है, अपितु एक ही है। आत्मा और परमात्मा, जीव और शिव नाम अलग-अलग भले हैं परन्तु वस्तु अलग-अलग नहीं है, एक ही है।

आत्मा और परमात्मा को, जीव और शिव को, जीव और जीव के लक्ष्य-प्राप्तव्य को एक समझकर उससे एकता स्थापित कर लेना ही अभेददर्शन है और यही वास्तविक ज्ञान है। इसीलिए तो सद्गुरु कबीर को कहना पड़ा—

दौड़त दौड़त दौड़िया, जहँ तक मन की दौर।
दौड़ थका मन थिर हुआ, वस्तु ठौर की ठौर ॥

अपने लक्ष्य-प्राप्तव्य (ईश्वर-ब्रह्म-मोक्ष) को अपने से अलग मानकर लोग वहां तक दौड़ते रहे जहां तक उनका मन कल्पना कर सकता था, परन्तु बाहर दौड़ते-दौड़ते, ईश्वर-ब्रह्म-मोक्ष को खोजते-खोजते जब वह न मिला और मन थककर, कल्पना करना छोड़कर अंतर्मुख हुआ तब पता चला कि जिसे मैं बाहर खोज रहा था, जिसे बाहर से पाना चाहता था वह तो मैं ही हूं, वह मेरा अपना आपा अस्तित्व ही है। इस अभेदज्ञान के होते ही मन की सारी दौड़-तृष्णा समाप्त हो गयी और मन आत्मतुष्ट, आत्मतृप्त, आत्मशांत हो गया।

यह अच्छी तरह से समझ लेना कि मैं और मेरा लक्ष्य एवं प्राप्तव्य अलग-अलग नहीं, किन्तु एक ही है और वह मैं स्वयं हूं—यही अभेद दर्शन है और यही सर्वोपरि ज्ञान है, परन्तु इसका अनुभव ध्यान से होगा और सच्चा-वास्तविक ध्यान है मन का निर्विषय-निर्विचार हो जाना।

कल्याणार्थी-मुमुक्षु साधक को यह अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि उसका अर्थात जीव का और जगत का कोई मौलिक संबंध नहीं है, जो भी संबंध है औपाधिक है और देह-मन-इंद्रिय संघात से है। जैसे नदी के दोनों तटों को जोड़ने वाला पुल होता है वैसे ही जीव और जगत को जोड़ने वाला मन है। यद्यपि मन भी औपाधिक है, विकारी है, क्योंकि न तो चेतन के स्वरूप में मन है और न जड़ तत्त्वों के स्वरूप में मन है। मन का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, वह तो छायावत है, फिर भी मन द्वारा ही जीव का जगत से संबंध होता है। जब तक मन रहता है तब तक जीव का जगत से संबंध बना रहता है और जब मन पूर्णतः संकल्प-स्मरण रहित शांत हो जाता है तब जीव और जगत दोनों का अस्तित्व रहते हुए भी जीव का जगत से कोई संबंध नहीं रह जाता। वह सारे संबंधों से रहित असंग, अकेला, अद्वैत अपने आप में स्थित रहता है। इस अवस्था में वह सारे द्वंद्वों से रहित शांत रहता है।

इस दशा का अनुभव हर किसी को प्रगाढ़ निद्रावस्था में हर दिन होता है। क्योंकि प्रगाढ़ निद्रा में मन सारे संकल्पों, स्मरणों से रहित शांत रहता है। जाग्रत एवं स्वप्न अवस्था में मन में निरंतर संकल्प-विकल्प-स्मरण चलते रहते हैं और जीव सुख-दुख, हर्ष-शोक, राग-द्वेष, चिंता-फिक्र, शत्रु-मित्र आदि के द्वंद्व एवं झमेले में पड़ा रहता है, किन्तु प्रगाढ़ निद्रावस्था में जहां मन सारे संकल्पों-विकल्पों-स्मरणों से रहित शांत रहता है, तब सुख-दुख, हर्ष-शोक, राग-द्वेष का सारा द्वंद्व-झमेला समाप्त हो जाता है। यही शिवत्व की स्थिति है। इस दशा के लिए गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—

जीव शिव सम सुख शयन, सपने कछु करतूति।
जाग्रत दीन मलिन अति, विकल विषाद विभूति ॥

अर्थात जीव जब निद्रावस्था में सुखपूर्वक शयन करता है तब वह शिवस्वरूप रहता है, क्योंकि उस अवस्था में मन शांत रहने से कोई प्रपंच नहीं रहता।

स्वप्नावस्था में वह मनोमय जगत में विचरण करता है और अचेतन मन में सुख-दुख के द्वंद्व सामने चलता रहता है, परन्तु जब वह जागृतावस्था में होता है तब उसके सामने सारा प्रपंच उपस्थित होने से विकल-अशांत बना रहता है।

निद्रावस्था में मन शांत होने से जब जीव के सामने कोई प्रपंच नहीं रहता तब वह अपने आप में रहता है, वह अपने को पा गया होता है। इसीलिए निद्रावस्था को सुषुप्ति कहा जाता है। छांदोग्य उपनिषद् में इसको स्वपीति-स्व+अपीति = अर्थात अपने को पाना कहा गया है।

निद्रावस्था-सुषुप्ति में मन संकल्प-विकल्प रहित रहने से भले ही जीव के सामने संसार-प्रपंच नहीं रहता, परन्तु संसार के संस्कार तथा अज्ञान-वासना आदि तो बीज रूप में रहते ही हैं, और जैसे ही वह निद्रावस्था से बाहर आता है वैसे ही संसार-प्रपंच उसके सामने खड़ा हो जाता है और जीव फिर सुख-दुख, हर्ष-शोक, राग-द्वेष, मेरा-तेरा आदि के द्वंद्व-झमेले में उलझ जाता है। इसीलिए योग-दर्शन में निद्रावस्था को ध्यान-समाधि का अंग न कहकर वृत्ति कहा गया है।

निद्रावस्था का उदाहरण समझने-समझाने के लिए दिया जाता है कि जिस प्रकार निद्रावस्था में मन संकल्प-विकल्प रहित शांत रहने से जीव के सामने संसार-प्रपंच नहीं रहने के कारण वह अपने आप में रहता है उसी प्रकार ध्यानावस्था में मन जब पूर्ण निर्विषय-निर्विचार शांत हो जाता है तब अपने आप शुद्ध-शांत रह जाता है। बाह्य जगत अपने आप में रहते हुए उस जीव का उस समय उससे कोई संबंध नहीं रह जाता, क्योंकि जीव का जगत से संबंध जोड़ने वाला मन उस समय विलीन हो गया रहता है।

श्वास-प्रेक्षा, ज्योति-दर्शन, बिन्दु-दर्शन, नाद-श्रवण आदि ध्यान नहीं है, क्योंकि यह सब करते समय मन उपस्थित रहता है। यह सब प्रारंभिक साधना काल में मन को एकाग्र करने के लिए आलंबन हैं। प्रारंभिक साधना में इन सब की उपयोगिता है। परन्तु यह सब विषय हैं। हां, यह सब शुद्ध विषय हैं। कांटे से कांटा निकालने के समान इनकी आवश्यकता है। ध्यान तो है मन का पूर्ण निर्विषय-निर्विचार हो जाना—ध्यानं निर्विषयं मनः। विषय का अर्थ है—पदार्थ। मन में जो भी संकल्प-विकल्प, विचार-चिंतन-स्मरण आयेगा उसमें कोई-न-कोई पदार्थ सामने रहेगा ही। बिना पदार्थ के संकल्प-विकल्प, विचार-चिंतन होगा ही नहीं और पदार्थ का मतलब है—संसार। पदार्थ मूर्त-अमूर्त दोनों रूप में हो सकता है।

मन का निर्विषय हो जाना ही वास्तविक ध्यान है, परन्तु इस स्थिति में पहुंचने के लिए पहले मन को विकारी-संसारी चिंतन से हटाकर आत्मज्ञान-विवेक के चिंतन में लगाना होगा और उन सारे क्रिया कलाप, रहन-सहन, खान-पान, संगति का त्याग करना होगा, जिनसे मन में कुसंस्कार आते हैं और मन विकारी-वासनाग्रस्त होता है। इसी दशा के लिए सद्गुरु कबीर ने कहा है—

शब्द निरंतर मनुवा राता, मलिन वासना त्यागी।
उठत बैठत कबहूँ न छूटे, ऐसी तारी लागी॥

जब तक जीवन है तब तक जीवन का निर्वाह करना है, लोगों से मिलना-जुलना, व्यवहार है और यह सब मजबूरी है, क्योंकि इनके बिना जीवन चल नहीं सकता, परन्तु यह सब इतनी सावधानी से करना होगा कि इन सबको करते समय मन में लोभ-मोह, राग-द्वेष, अहंता-ममता आदि के विकार न आने पाये। मन कुसंस्कार से ग्रसित न होने पाये, क्योंकि कोई चाहे कितना भी साधना-अभ्यास क्यों न कर ले विकारी एवं कुसंस्कारग्रस्त मन कभी निर्विषय नहीं हो सकता। निर्विषय तो शुद्ध, संयत और निर्विकारी मन ही होगा और त्याग-तप, साधना अभ्यास, विवेक-वैराग्य आदि की आवश्यकता मन को शुद्ध, संयत, निर्विकारी बनाने के लिए होती है। जीव तो स्वरूपतः-स्वभावतः शुद्ध, निर्मल, निर्विकार है; अशुद्ध, मलिन एवं विकारी तो है जीव-जगत का संबंध जोड़ने वाला मन और इसी मन को शुद्ध, संयत, निर्मल एवं निर्विकार बनाने के

लिए त्याग-तप, विवेक-वैराग्य एवं साधना-अभ्यास की आवश्यकता होती है। मन जब त्याग-तप, विवेक-वैराग्य आदि द्वारा पूरी तरह मंज जाता है, तब ऐसा मन ही लंबे समय के अभ्यास से निर्विषय होता है। और मन का निर्विषय हो जाना ही ध्यान है। जब मन निर्विषय हो गया, मन में कोई संकल्प-विकल्प, स्मरण, विचार नहीं रह गया, तब जीव का जगत से संबंध नहीं रह गया और जगत-संबंध से रहित जीव अपने आप शेष शुद्ध-शांत अपने स्वरूप में स्थित हो गया।

यह वैज्ञानिक तथ्य है कि हर मौलिक पदार्थ की अंतिम स्थिति उसके अपने स्वरूप में ही होती है, पर स्वरूप में नहीं। इसीलिए सद्गुरु कबीर ने कहा है—जहाँ का पद तहाँ समाई। वहां किसी दूसरे की उपस्थिति नहीं रहती। "कबीर समाना बूझ में, जहाँ दूतिया नाहिं।" योगदर्शनकार महर्षि पतंजलि के अनुसार यही चितशक्ति का अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना है–स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितशक्तिरिति।

मन का निर्विषय होने का अर्थ है—सकंल्प शून्यता, पूर्ण निर्विचार अवस्था। उस अवस्था में मैं शुद्ध-बुद्ध, अजर-अमर ज्ञानस्वरूप चेतन हूं यह भाव-विचार भी नहीं रह जाता, क्योंकि वहां मन ही नहीं है। इसी के लिए योगदर्शन में कहा गया है—आत्मभावभावना विनिवृत्तिः। (4/25) अर्थात संकल्प-शून्य अवस्था में मैं आत्मा हूं यह भाव भी नहीं रह जाता। ध्यान रहे, यहां यह नहीं कहा गया है कि आत्मा का अभाव हो जाता है किन्तु आत्मभाव-भावना की निवृत्ति कहा गया है। मन के संकल्प शून्य हो जाने पर शेष आत्म सत्ता रह जाती है, अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित।

स्वस्वरूप का यथार्थ ज्ञान न होने के कारण जीव मन द्वारा देवी-देवताओं, भगवान-भगवती के साकार-निराकार अनेक रूप गढ़ता है और ध्यान-साधना द्वारा उनके दर्शन करके या उनमें मिलकर परमानंद का अनुभव करना चाहता है, किन्तु वह यह भूल जाता है कि बाहर से जो कुछ भी प्राप्त होगा वह विषय होगा और जीव का उससे कभी स्थायी संबंध नहीं होगा। बाहर से जो कुछ भी मिलेगा उसका नाम चाहे जो रख लिया जाये वह आंख, नाक, कान, जिह्वा, त्वचा एवं मन द्वारा ही मिलेगा और वह सब विषय ही होगा और ध्यान है मन का निर्विषय हो जाना। ध्यान में जब मन उन्मुन-शांत हो गया तब वहां कुछ देखना, सुनना, जानना और पाना कहां रह गया। वहां तो शुद्ध चेतन सत्ता मात्र ही निर्विशेष रह जाता है। इसी दशा के लिए छांदोग्य उपनिषद् में कहा गया है—यत्र नान्यत् पश्यति नान्यत् शृणोति नान्यत् विजानाति सः भूमा। अर्थात जहां दूसरे को देखा नहीं जाता, सुना नहीं जाता और जाना नहीं जाता वह भूमा अर्थात आत्मसत्ता की शुद्ध स्थिति है।

सार यह है कि सारे भूल, भ्रम, भ्रांति को मिटाकर निर्भ्रान्त यह बोध होना कि मैं और मेरा लक्ष्य, मेरा प्राप्तव्य मुझसे अलग नहीं किन्तु मेरा अपना आपा, चेतनस्वरूप ही है, मैं ही मेरा लक्ष्य हूं—सच्चा वास्तविक ज्ञान है और साधना-अभ्यास द्वारा मन का संकल्प-विकल्प, स्मरण-चिंतन से रहित निर्विचार हो जाना—ध्यान है। अपने स्वरूप का, लक्ष्य का सच्चा बोध हो जाने पर सारा भटकाव दूर होकर जीवन में स्थिरता आ जाती है और तन-मन की जो शक्ति बाहर भटकने में नष्ट हो रही थी, वह सेवा-साधना में लग जाती है और निरंतर के अभ्यास से मन अंतर्मुख होकर जब पूर्ण निर्विषय-निर्विचार होकर आत्मलीन हो जाता है तब जीव का जगत से संबंध टूटकर वह अपने आप में स्थित हो जाता है। आत्मस्थिति के बाद आगे न कोई रास्ता रह जाता है और न कोई मंजिल। इसी दशा-स्थिति के लिए किसी ने बहुत सुंदर कहा है—तुम्हें पहुंचना उस मंजिल पर है जिसके आगे राह नहीं। यह वह मंजिल है जहां पहुंचकर किसी को पुनः लौटना नहीं होता—यद्गत्वा न निवर्तन्ते (गीता 15/6)। हमारा सारा प्रयत्न इसी मंजिल पर पहुंचने के लिए होना चाहिए। इस मंजिल में ही जीव को पूर्ण विश्राम मिलेगा।

—धर्मेन्द्र दास

सफल जीवन के सूत्र

लेखक—विवेक दास

जीवन में हर हाल में हर कोई सफल ही होना चाहता है। और इस दिशा में हर कोई अपने-अपने स्तर पर प्रयत्नवान भी है। पर कितने सफल हुए हैं और किसे सफल कहना चाहिए यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। सबका नजरिया अलग-अलग हो सकता है, पर सफलता की वास्तविकता को सभी समझ पाते हैं, कहना बड़ा कठिन है। कुछ के अनुसार धन-ऐश्वर्य हासिल कर लेना सफलता है, कुछ के अनुसार भोगों को उन्मत्त होकर भोगना जीवन की सफलता है। कुछ लोगों के अनुसार पारिवारिक समृद्धि हासिल कर लेना सफलता है। तो कुछ लोगों को अपने सपने और शौक को पूरा करना जैसे संगीत, खेल, लेखन या किसी पद-ओहदे पर पहुंच जाना सफलता है। पर क्या इन सबको प्राप्त करने के पश्चात मानसिक शांति और मानसिक प्रसन्नता बनी रह सकती है। मन का अभाव और दुख समाप्त हो सकता है। यदि इसको समझना है तो ऐसे सफल लोगों को देखकर समझा जा सकता है कि उनके जीवन की क्या स्थिति है।

वास्तव में सफल जीवन उसे ही कहा जा सकता है जिस जीवन में प्रसन्नता और शांति का साम्राज्य हो। जीवन की अनुकूलताओं और प्रतिकूलताओं के पश्चात भी एक विशेष शांति और सुकून हो। यह मात्र धन, ऐश्वर्य, भोग, पद, ओहदा प्राप्त कर लेने या संगीत, खेल या लेखन आदि में सफल हो जाने से संभव नहीं है। इसके लिए जीवन को अलग ढंग से जीने की आवश्यकता होगी। हम दुनिया में ऐसे लोगों को भी देखते हैं जिनके पास बाह्य उपलब्धि तो कम या सामान्य ही होती है पर मानसिक शांति और प्रसन्नता विपुल मात्रा में होती है। जिनको देखकर कहा जा सकता है कि वास्तव में यह व्यक्ति सफल है।

गुजरात सौराष्ट्र में जाना हुआ। सावरकुंडला के पास एक संत से मुलाकात हुई। उनके पास कुछ भी नहीं था पर उनकी मानसिक प्रसन्नता और शांति अद्भुत थी। वे एक गृहस्थ सज्जन के घर के पीछे बाड़ी में रहते थे। उनके पास एक सामान्य कुर्सी, एक पलंग, कुछ कपड़े और कुछ पुस्तकें थी। पर उनकी मानसिक प्रसन्नता अद्भुत थी। जब मैंने उनसे मुलाकात की तो उस समय उनकी उम्र करीब नब्बे-पंचानबे वर्ष के बीच रही होगी, पर उनकी मस्तानगी का क्या कहना!

दूसरी घटना हमारे गुरुदेव सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी के बड़े गुरुभ्रात श्री विमल साहेब (भंडारी साहेब)की है, जिनका जून 2021 में सौ से अधिक उम्र में शरीरांत हुआ है। विगत 8-10 वर्षों से उन्हें कुछ शारीरिक असमर्थता हो गयी थी। पर उनके मन की मस्तानगी और प्रसन्नता चेहरे से साफ झलकती थी। हमेशा उनको हंसते-मुस्कुराते ही देखा गया। साधु के पास बाह्य रूप से क्या है। पर उनकी प्रसन्नता और शांति को देखकर लगता है कि वास्तव में उनका जीवन पूरी तरह से सफल है।

ऐसा भी नहीं कि कोई घर-परिवार को छोड़कर जंगल में या मठ-आश्रम में चला जाये तभी शांति और प्रसन्नता संभव होगी, जीवन सही अर्थ में सफल होगा। कितने गृहस्थी जीवन में रहने वाले लोगों को भी देखा गया है कि वे जीवन के सब काम करते हुए जीवन में पूरी तरह से सफल हैं। साधु तो कुछ लोग ही हो पाते हैं अधिकतम तो गृहस्थी जीवन ही जीते हैं। सफल और सुखी जीवन के लिए साधु या गृहस्थ होने से मतलब नहीं है अपितु सही समझ और समझपूर्वक आचरण की आवश्यकता है। हां, साधु जीवन उसी के लिए समर्पित होता है। पर जीवन में हर जगह भुलावन वन है। भूलने-भटकने की स्थिति आ जाती है। परंतु समझ और विवेक पूर्वक जीवन जीयेंगे तो कहीं भी रहकर सफल जीवन के स्वामी हो सकते हैं। इसके लिए कुछ सूत्रों पर विचार करें।

1. कर्तव्य का पालन—योग्यता और पद के आधार पर सबके अलग-अलग कर्तव्य होते हैं। जिसका जो कर्तव्य है उसका पूरी ईमानदारी और निष्ठा से पालन होना चाहिए। यदि हम अपने कर्तव्य पथ से विमुख होते हैं तो मन में कभी प्रसन्नता नहीं आ पायेगी। कितने लोग कर्तव्य का पालन करने में आलस्य और प्रमाद करते हैं, जिसकी वजह से वे तो उलझे होते ही हैं, अपने साथ औरों की भी उलझाते हैं। परिवार और समाज में अव्यवस्था इसीलिए होती है। जो शिक्षक स्कूल में ठीक से नहीं पढ़ाते, अधिकारी अपना काम ठीक से नहीं करते हैं और अपने कर्तव्य पथ को भूलकर जनता को परेशान करते हैं, उनकी मानसिक स्थिति कभी सही नहीं हो सकती। पुलिस जनता की सेवा के लिए है, जनता की रक्षा और सलामती के लिए है पर उनमें से ही कितने जनता को लुटते हैं। यह देख और सुनकर दुख लगता है। कितने नेता लोग जो समाज से चुनकर आते हैं जब पद पा जाते हैं तब जिस जनता के पहले हाथ-पांव जोड़ रहे थे उनको कीड़े-मकोड़े की तरह समझने लगते हैं और अपने कुर्सी और पद के खातिर हिंसा-हत्या भी करवा देते हैं। पर यह कब तक होगा। अंततः मुंह की खानी पड़ती है। समय बीतते देर नहीं लगती है जो नेता सिंह की तरह गरजते थे एक समय किसी कोने में दुबके रहते हैं। और उनका ही कर्म उनको जीने नहीं देता है। इस दुनिया की किताब में सब कुछ दिखता है।

कर्म को यदि पूजा समझकर किया जायेगा तो कर्म अच्छा भी होगा और जो मानसिक प्रसन्नता होगी वह भी अद्‌भुत होगी। आप-हम जीवन के किसी भी क्षेत्र में कार्य करते हों सब जगह ईमानदारी और निष्ठा से काम करके ही मानसिक प्रसन्नता और शांति का अनुभव कर सकते हैं।

कर्तव्य पालन से तात्पर्य एक दूसरे के प्रति जिम्मेदारी से भी होती है। जैसे पिता का पुत्र के प्रति, पुत्र का पिता के प्रति, पति का पत्नी के प्रति, पत्नी का पति के प्रति, सास का बहू के प्रति, बहू का सास के प्रति, भाई का बहन के प्रति, बहन का भाई के प्रति, आपस में जो एक-दूसरे के प्रति कर्तव्य हैं उनको भी समर्पण भाव से करने की आवश्यकता है, तभी एक-दूसरे के प्रति प्रेम और विश्वास बने रह सकते हैं और घर-परिवार में अच्छा माहौल बन सकता है। यदि कर्तव्य का पालन ठीक से नहीं करते हैं तो कैसे सुखी और संतुष्ट हो सकते हैं।

यदि आप अपने जीवन में प्रसन्न, संतुष्ट और सफल होना चाहते हैं तो अपने कर्तव्य में चाहे वह किसी भी क्षेत्र में हो कभी भी किसी प्रकार कोताही न बरतें बल्कि सच्चाई से निष्ठापूर्वक अपने कर्तव्य का पालन करें।

2. अति सर्वत्र वर्जयेत—जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संतुलन की आवश्यकता है। संतुलन व्यवस्था देता है, संतुलन सुख देता है। महात्मा बुद्ध का मार्ग मध्यम मार्ग है। सद्‌गुरु कबीर का मार्ग मध्यम मार्ग है। न भोग का अति उचित है और न ही त्याग का। अति भोग रोग, संताप, बेचैनी और दुख पैदा करता है तो अति त्याग शुष्कता और निरसता पैदा करता है। देखो न, एक तरफ तो लोग भोग में उन्मत्त होकर अपने तन-मन-धन सब का नाश कर रहे हैं तो अति उदासीन और त्यागी व्यक्ति जीवन की समरसता, सहजता और मधुरता ही खो देते हैं और उनकी जिन्दगी बेजान-सी हो जाती है। न वे अपने लिए और न ही समाज के लिए किसी काम के रह जाते हैं। मैने एक संत के बारे में सुना है उन्होंने हठ करके अन्न-जल त्याग दिया और अन्ततः रुग्ण होकर मर गये। लोग उनको समझाने की कोशिश करते रहे पर उन्होंने नहीं माना सो नहीं माना।

सद्‌गुरु कबीर साहेब का एक बड़ा गहरा-सा सूत्र है—

"भोगहु भोग भुक्ति जनि भूलहु, योग युक्ति तन साधहु हो"

भोगों को भोगो पर उनमें भूल न जाओ। भोग में जाना भी योग के लिए होना चाहिए। हम पांचों इन्द्रियों से पांचों विषयों का (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध) उपभोग करते हैं। पर यदि हम इनमें अतिक्रमण करेंगे तो न हमारा तन अच्छा रह सकता है और न ही मन ।

आजकल मोबाइल और सोशल मीडिया का युग है। इनकी आवश्यकता है और इनसे जीवन के बहुत सारे क्षेत्रों में सहुलियत होती है पर इसका अतिक्रमण करके आज का युवा समाज कहां जा रहा है। कैसे विषय व्यसन और फैशन में फंसता जा रहा है, किसी से छिपा नहीं है। इसके चलते समाज-परिवार में टूटन, हिंसा, हत्या और बलात्कार जैसे अपराध भी खूब होने लगे हैं। क्योंकि मोबाइल में नेट के माध्यम से लोग इन सबको सीख रहे हैं। यह बात सच है कि टेक्नालॉजी के नये संसाधन मानव समाज के लिए वरदान है पर इनका दुरुपयोग अभिशाप भी है। अतएव अति सर्वत्र वर्जयेत। भगवान कृष्ण ने भी गीता में कहा—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

जो साधक आहार उचित रखता है, जो कर्मों की चेष्टा तथा सोना-जागना उचित रखता है, उसका योग दुखों का नाशक होता है। खाने-पीने में संतुलन, घूमने-फिरने, देखने-सुनने, सोचने-विचारने हर बात में संतुलन चाहिए। जीवन में कर्मों के संतुलन से मन का संतुलन होगा और मन का संतुलन ही जीवन में सच्चा सुख और शांति ला सकता है, जीवन को सफल बना सकता है।

न अत्यधिक आलस्य और प्रमाद उचित है और न ही अत्यधिक कर्मों में प्रवृत्ति उचित है। जीवन में संतुलन ही सुख ला सकता है।

3. प्राप्त में संतोष—मनुष्य को हमेशा अपनी क्षमता और योग्यता के अनुसार मेहनती होना चाहिए, परन्तु उससे जो फल प्राप्त हो उसमें संतोष रखना चाहिए क्योंकि तृष्णालु व्यक्ति कहीं का नहीं रह जाता है। तृष्णा उसके चित्त को जलाती रहती है। ऐसे व्यक्ति के जीवन में चाहे जितनी भौतिक समृद्धि हो जाये, वह कभी सुखी नहीं हो पाता। सद्गुरु पूरण साहेब ने इस पर बड़ा सुन्दर खाका खींचा है—

निर्धनिक कछु धन चहै, धनिक चहै विशेष।
विशषहु विशेष चहे, होवन चहै नरेश॥
नरेश चहै इन्द्र पद, इन्द्र चहै रणजीत।
असुर चहै सुरपति बनन, यह तृष्णा की रीत॥

(वैराग्य शतक)

सुन्दरदास जी ने बड़ा सुन्दर कहा है—

जो दस बीस पचास भये शत होय हजार तो लाख मंगेगी।
कोटि अरब्ब खरब्ब असंख्य पृथ्वीपति होन की चाह जगेगी।
स्वर्ग पाताल के राज करों तृष्णा अधिकी अति आग लगेगी।
सुन्दर एक संतोष बिना सठ, तेरी तो भूख कभी न भगेगी॥

शास्त्रों में कहा गया है—संतोषं परमं सुखम्। संतोष में परम सुख है। वास्तव में न प्रकृति में खजाने की सीमा है और न मन में पाने की सीमा है। परन्तु न हम प्रकृति के खजाने को पूरा पा सकते हैं और न ही कभी मन की तृष्णा पूरी हो सकती है। बस अपनी क्षमता और योग्यता अनुसार परिश्रम करना और प्राप्त चीजों में संतुष्ट होकर खुशहाल जीवन जीना, हमारे वश में है और इसे हम कर सकते हैं।

सद्गुरु कबीर साहेब तो सहज भाषा में सहज ढंग से कहते हैं—

सांई इतना दीजिए, जामे कुटुंब समाय।
मैं भी भुखा न रहूं, साधु न भूखा जाय॥

सुखी और आत्मसंतुष्ट रहने का बेहतरीन तरीका है शक्ति और योग्यता के अनुसार लगन और ईमानदारी से परिश्रम करना और जो प्राप्त हो उसे प्रसाद और अपनी किस्मत समझकर स्वीकार करना। फिर तो सुकून और शांति जीवन में होगी ही।

4. व्यवहार की सरलता—जो व्यावहारिक रूप से सरल और सहज होते हैं अपेक्षा खुशनुमा जिन्दगी जी पाते हैं। और अपने साथ या आसपास के लोगों को सुखी और प्रसन्न रख पाते हैं। ऐसे ही लोगों का आदर्श अन्य लोग भी लेते हैं। हम जिस किसी से भी मिलें बड़े सहज और सरल होकर मिलें। हमारे व्यवहार में कहीं भी अहं या दिखावा की गंध नहीं आनी चाहिए। क्योंकि

यहां किसी का कहीं कुछ नहीं रह जाता है। बस एक सुन्दर स्वभाव और व्यवहार ही लोगों के दिल में घर कर जाता है।

वास्तव में सरल और विनम्र व्यवहार से दूसरे तो अच्छा महसूस करते ही हैं, स्वयं भी हम अन्दर से संतुष्ट हो पाते हैं।

कभी-कभी हम व्यवहार में रूखे और असभ्य हो जाते हैं जिससे सामने वाले व्यक्ति से हमारा व्यवहार बिगड़ जाता है। दूसरा व्यक्ति हमसे दुखी हो जाता है। हमें यह हमेशा याद रखना चाहिए कि चाहे जितना बड़ा नुकसान हो जाये, चाहे जितनी बड़ी प्रतिकूलता आ जाये हमारी सौम्यता और सहजता नहीं खोनी चाहिए। बात-व्यवहार में कटुता और अभद्रता नहीं आना चाहिए । मैंने एक बहुत ही सुन्दर कहानी सुनी है कि कैसे नुकसान होने पर भी आपस के प्रेम को जीवन्त रखा जा सकता है।

एक सज्जन ने अपनी पत्नी के जन्मदिन पर एक महंगी कार गिफ्ट में दिया। उसने पत्नी को कार की चाबी और उसका कागजात वाला लिफाफा देकर गले से लगा लिया और कहा—"प्रिये! यह आपके लिए मेरी तरफ से उपहार है। आप जायें इस नयी गाड़ी के सफर का आनंद लीजिए। मैं यहां बच्चों को सम्हालता हूं।" पत्नी की खुशी का ठिकाना नहीं रहा! वह खुशी-खुशी कार लेकर निकल गयी। अभी कुछ ही दूर गयी थी कि अचानक उसकी कार डिवाइडर से टकरा गयी। वह उतरकर देखती है तो उसकी नयी कार की बॉडी बुरी तरह से रगड़ गयी है। वह डर गयी। आज ही उन्होंने मुझे यह कार गिफ्ट दिया है। पता नहीं क्या कहेंगे। वहां पर ट्रैफिक पुलिस भी आ गयी। उन्होंने गाड़ी का कागजात और ड्राइविंग लायसेन्स मांगा तो उसने उस लिफाफे को खोला जो उसके पति ने दिया था। उसमें सब कागजात थे और उसका ड्राइविंग लायसेंस भी था और उसी के साथ में उसके पति का लिखा हुआ एक कागज भी था। लायसेन्स आदि ट्रैफिक पुलिस को दिखाते हुए उसने अपने पति का लिखा वह पत्र पढ़ा तो उसकी आंखों में आंसू छलक आये। उसमें लिखा था—

"प्रिये! यह कार मैं आपको दे रहा हूं। कभी यदि यह टकरा जाये और डैमेज हो जाये तो इसकी चिन्ता मत करना। आपको कुछ नहीं होना चाहिए। आप सुरक्षित रहें। क्योंकि मेरे लिए आप महत्त्वपूर्ण हैं, गाड़ी नहीं।"

आप सोचिये इन थोड़े से वाक्यों को पढ़कर उस महिला के मन में कितनी शांति और सहजता का अनुभव हुआ होगा और उसका अपने पति के प्रति निष्ठा और प्रेम कितना बढ़ गया होगा।

ठीक ऐसे ही एक और घटना घटी । एक युवक ने अपनी पत्नी को शादी की वर्षगांठ पर बाईस लाख का हीरों का हार गिफ्ट किया। पत्नी भी बहुत ही ज्यादा खुश थी। चार-छह दिन बाद उसे अपने मायके कोई उत्सव में जाना हुआ। वहां भीड़ तो थी ही। वह हार निकालकर रखी और बाथरूम गयी। वहां से निकली तो देखा कि हार गायब है। उसने इधर-उधर खोजा, परन्तु हार नहीं मिला तो वह घबराकर रोने लगी। इतना महंगा हार उन्होंने गिफ्ट किया। यदि उनको पता चलेगा कि वह गुम हो गया तो पता नहीं वे क्या करेंगे। मुझ पर तो टूट ही पड़ेंगे। वह डर और चिंता से रोने लगी। उसका पति भी वहां गया था। किसी ने जाकर यह बात उनको बतायी तो वह आया और अपनी पत्नी को गले से लगाकर कहा—अरी पागल! हार गुम हो गया न, तुम तो नहीं गुमी हो। क्यों इतना रोये जा रही हो। हार तो फिर से आ जायेगा।

सोचिये उसको कितना सुकून लगा होगा। वास्तव में वह हार के खो जाने के कारण ही नहीं रो रही थी बल्कि हार के खो जाने पर अपने पति की प्रतिक्रिया की कल्पना के कारण ज्यादा दुखी थी। पर पति का सरल व्यवहार और उसके प्रति प्रेम उसके लिए हार से भी कई गुना ज्यादा महत्त्वपूर्ण था।

वास्तव में हम जीवन व्यवहार में थोड़ी-थोड़ी बातों में रुष्ट और खिन्न हो जाते हैं। और अपने साथ रहने वाले लोगों के साथ व्यवहार खराब कर लेते हैं जो ठीक

नहीं। यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए कि किसी प्रकार के नुकसान की भरपाई तो हो सकती है पर व्यावहारिक क्षेत्र में जो कटुता की स्थिति आती है, उसकी भरपाई करना कठिन हो जाता है। इसलिए धन और पदार्थ के कारण लोगों से अपना व्यवहार कटुतापूर्ण न बनायें। जब हमारा जीवन सब के साथ समरस और सहज होगा तभी हम सुखी जीवन जी सकते हैं।

5. अहंकार का विसर्जन—अहंकार एक ऐसा शत्रु है जो पदे-पदे सबको परेशान करता रहता है। जीवन में अशांति और दुख का प्रमुख कारण अहंकार ही है। अहंकारी आदमी किसी को भी अच्छा नहीं लगता। उससे सभी दूर भागते हैं। वह किसी को भी अपना नहीं बना पाता। पर आश्चर्य है अहंकारी आदमी अपना नुकसान देखते हुए भी अहंकार को छोड़ नहीं पाता। अहंकार मिथ्या चीजों का ही होता है। अहंकार धन, पद, रूप, जवानी, विद्या, गुण आदि किसी का भी हो सब कुछ क्षणिक और परिवतर्नशील हैं। यह अपना माना हुआ शरीर भी तो नित्य मृत्यु के मुख में जा रहा है। फिर किस चीज का अहंकार और क्यों। अहंकार से सम्बन्धों में तो दूरियां पैदा होती ही हैं अपने आप से भी हमारी दूरी होती जाती है। मतलब हम अपने अस्तित्व से दूर होते हैं, अपने स्वरूप-भाव से दूर होते जाते हैं। अतएव अहंकार के विसर्जन से ही शांति की प्राप्ति हो सकती है

6. आत्मसंयम—आत्मसंयम से जीवन में जो सूकुन और शांति मिलती है वह भोगों में कहा संभव है। यहां आत्मसंयम से तात्पर्य इन्द्रिय और मन के संयम से है। असंयम दुख लाता है और संयम सुख लाता है। संयमी व्यक्ति तन और मन से सुखी होता है किन्तु असंयमी व्यक्ति बिलबिलाते रहता है। यदि हम इच्छाओं में संयम करेंगे तो थोड़ी वस्तुओं में सुखी हो सकेंगे। जीवन में तृष्णा और लालच समाप्त हो जायेगा। यदि वाणी में संयम होगा तो लोगों के साथ हमारा व्यवहार सामंजस्यपूर्ण होगा। व्यवहार मधुर और सुखकर होगा। यदि रसासक्ति में संयम होगा तो असंयमित खान-पान करके स्वास्थ्य खराब न होगा बल्कि स्वास्थ्य अच्छा होगा। यदि विचारों में संयम होगा तो मानसिक संतुलन बना रहेगा परिणामस्वरूप मानसिक शांति बनी रहेगी। एक तरह से कह सकते हैं सफल जीवन के लिए आत्म संयम की महती आवश्यक है।

7. आत्मविश्वास—आत्मविश्वास जीवन में वह बल प्रदान करता है जो हमें कहीं रुकने और टूटने नहीं देता। किसी भी क्षेत्र में आत्मविश्वास की कमी एक तरह से बैरियर का काम करती है। यदि एक विद्यार्थी को यह विश्वास न हो कि मैं पास हो सकता हूं, अच्छे अंक ला सकता हूं तो क्या वह सही ढंग से पढ़ पायेगा। यदि एक उद्योगपति को यह आत्मविश्वास न हो कि मैं सफल हो पाऊंगा, तो क्या वह एक अच्छा उद्योगपति बन सकता है। और भी सामान्य बात लें जैसा कि एक ड्राइवर में यदि आत्मविश्वास की कमी हो तो क्या ठीक से गाड़ी चला सकता है। एक मरीज डॉ. के पास जाये पर उसे आत्मविश्वास न हो तो क्या वह स्वस्थ हो सकता है। सबका उत्तर नहीं में ही आयेगा।

इसी प्रकार यदि जीवन में शांति और सुकून का विश्वास न हो तो जीवन में सुकून और शांति भी नहीं आ सकते। हमें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आत्मविश्वास के साथ ही आगे बढ़ने की आवश्यकता है। इसी तरह शांति की उपलब्धि भी की जा सकती है।

8. आत्मबोध—मनुष्य के जीवन में भटकाव और अशांति का एक मुख्य कारण है आत्मबोध का अभाव। दक्षिण भारत में एक संत हुए हैं रमण महर्षि, बड़े ही निर्मल आत्मा, बुद्ध पुरुष। जब उनके पास कोई जाता और कुछ भी समस्या रखता, समस्या का समाधान पूछता तो वे कहते कि मैं कौन हूं इसको जानो। सारे प्रश्नों के समाधान के लिए अपने आपको जानने और समझने की सलाह देते थे। निश्चित ही जब अपने आप का यथार्थ बोध हो जायेगा तो अनेक भ्रांतियां, अंधविश्वास और व्यर्थ की मान्यताएं अपने आप साफ हो जायेंगे।

आज मनुष्य अभावजनित दुख से कम दुखी है। बल्कि अपनी गलत आदतों, गलत मान्यताओं और गलत सोच की वजह से ज्यादा दुखी है। और इसका कारण है अस्तित्व बोध का अभाव। हमें अपने अस्तित्व, अपने आत्मस्वरूप का बोध नहीं होता है। हमें अपनी गरिमा और महत्ता का पता नहीं होता है। इसीलिए हम गलत स्वभाव और आदतें बनाकर गलत मान्यताओं में पड़कर पदे-पदे दुखी और अशांत होते जाते हैं।

अध्यात्म में दो बातों को समझने की बात कही जाती है स्व और पर को। स्व अपना आत्मस्वरूप है और पर यह जगत-प्रकृति है। इन दोनों को यदि सही ढंग से समझ लिया जाये तो बाह्य मान्यताएं यूं ही उड़ जाती हैं। हम न तो अपने आपको ठीक से समझ पाते हैं और न ही जड़ प्रकृति को। इसीलिए बाह्य मान्यताओं, भूत, प्रेत, देवी, देव, ईश्वर, परमात्मा, स्वर्ग, नरक आदि में उलझते जाते हैं। सांसारिक भोगों के पीछे भी उन्मत्त हो दौड़ते हैं। उसमें भी आत्मबोध का अभाव होता है। जिस समय मनुष्य को यह पता चल जायेगा कि मैं देह नहीं, देह तो खोल है; देह के अन्दर बैठा देह का नियंत्रक देह से क्रिया करने वाला मैं हूं। देह और देह सम्बन्धी समस्त प्राणी-पदार्थ क्षणभंगुर और परिवर्तन-शील हैं तो फिर वह क्यों सांसारिक भोगों के पीछे भागेगा।

उपनिषद् में इस पर बड़ा अच्छा कहा है—

आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पुरुषः।
किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत॥

(बृहदारण्यक उपनिषद्, 4/4/121)

यदि चेतन पुरुष आत्मा को यह अच्छी तरह ज्ञान हो जाये कि मैं देह नहीं आत्मा हूं। तो फिर किस इच्छा एवं कामना से शरीर के पीछे चलकर संताप सहेगा।

जिन चीजों और प्राणी-पदार्थों के राग-द्वेष में पड़कर हम रीझते और खीझते हैं, हर्ष-शोक के हिंडोले में झूलते रहते हैं जब इनकी अनित्यता और असत्यता की बात समझ में आयेगी और अपनी शाश्वतता की पहचान होगी तो राग-द्वेष का झगड़ा ही समाप्त हो जायेगा। और हम अपनी गरिमा में प्रतिष्ठित हो सकेंगे।

9. वर्तमान में जीना—हमारे जीवन में सारे दुख और संताप भूत-भविष्य को लेकर ही होते हैं। हम हमेशा भूत की घटनाओं और भविष्य की चिंताओं में ही उलझे रहते हैं। भूत में अनुकूल या प्रतिकूल जो भी घटनाएं घटित हुई हैं, उनको लेकर हर्षित और शोकित होते रहते हैं। या फिर भविष्य की बातों को लेकर चिंतित और दुखी होते हैं। जबकि वर्तमान में दोनों का कोई मतलब नहीं होता। भूतकाल की घटनाओं का इतना ही महत्त्व है कि बस उससे हम सीख ले सकते हैं। जो अच्छी घटनाएं हुई हैं, जो कुछ अच्छे कर्म हमसे हुए हैं, उनसे सत्प्रेरणा लेकर आगे बढ़ने की और जो कुछ गलत हुआ है उन्हें पुनः न दुहराने की। इसी प्रकार भविष्य के लिए योजना बनाने की आवश्यकता है। पर जो नहीं हुई हैं उन बातों को लेकर सशंकित और चिंतित होना कोई समझदारी नहीं है।

यदि हम वर्तमान में जीने का अभ्यास करें तो अधिकतम दुख और क्लेश नदारद हो जायेंगे। सोचें यदि मैं सिर्फ वर्तमान में कुछ कर रहा हूं या शांत बैठा हूं, भूत-भविष्य की कोई बात मन में है नहीं तो फिर सुख-दुख या हर्ष-शोक कहां हो सकता है। सुखी, आत्मसंतुष्ट, शांत रहने के लिए वर्तमान में रहने, जीने के समान न कोई औषध है और न कोई उपाय है। जो संत-महात्मा ध्यान, साधना और सजगता बनाये रखने का काम करते हैं वे सिर्फ और सिर्फ वर्तमान में होने के लिए हैं। इस स्थिति का जिसके जीवन में विस्तार होता जाता है मतलब सजगता, वर्तमान क्षण में ठहरने की स्थिति बढ़ती जाती है वही गहरी शांति का मालिक बनता जाता है।

इन सूत्रों को यदि जीवन में आत्मसात किया जाये और इनके अनुसार जीवन बनाया जाये तो निश्चित ही हमारा जीवन सफल और शांतिमय हो सकता है। ❑

व्यवहार वीथी

सुखी जीवन का मार्ग

दुनिया में हर आदमी तन-मन से स्वस्थ रहकर सुख और प्रसन्नतापूर्वक जीवन जीना चाहता है और इसी के लिए वह रात-दिन अथक प्रयत्न करता है, परन्तु बहुत कम लोग ऐसे हैं जो तन-मन से स्वस्थ रहकर प्रसन्नतापूर्वक जीवन जी रहे हैं। जो लोग तन से स्वस्थ हैं वे भी मन से अस्वस्थ एवं अशांत हैं और भौतिक सुख-सुविधाओं से संपन्न होकर भी प्रसन्नता का अनुभव नहीं कर पा रहे हैं। सच्चा सुख और प्रसन्नता बाहरी भौतिक प्राणी, पदार्थ एवं परिस्थिति पर निर्भर नहीं हैं, किन्तु मन की स्वस्थता, सकारात्मक चिंतन तथा कोमल-मधुर व्यवहार एवं सदाचरण पर अवलंबित हैं। मनुष्य तन-मन से स्वस्थ रहकर हर समय प्रसन्नता एवं सुखपूर्वक जीवन कैसे जी सकता है, उसके लिए आवश्यक सूत्रों में से चार प्रमुख सूत्र हैं—प्राप्त समय, शक्ति एवं योग्यतानुसार भरपूर परिश्रम; परिश्रम के परिणाम में प्राप्त फल में पूर्ण संतोष, साथियों के साथ प्रेम-विश्वासपूर्वक मधुर व्यवहार तथा सकारात्मक एवं सबका हितचिंतन।

1. भरपूर परिश्रम—हर मनुष्य का शरीर भौतिक तत्त्वों से निर्मित है, इसलिए भौतिक तत्त्वों से निर्मित शरीर को स्वस्थ एवं जीवित रखने के लिए भौतिक वस्तुओं की आवश्यकता हर मनुष्य को होती है, किन्तु भौतिक वस्तुएं आकाश से तो टपकती नहीं हैं। उन्हें तो पैदा करना होता है और पैदा करने के लिए कठोर परिश्रम की आवश्यकता होती है। परिश्रम करते रहने से जीवन निर्वाहिक वस्तुओं का उपार्जन तो होता ही है, शरीर भी स्वस्थ और निरोग बना रहता है। जो मनुष्य शारीरिक परिश्रम करने से डरता है या जी चुराता है उसे जीवन निर्वाहिक वस्तुओं की तंगी तो बनी ही रहती है उसका शरीर भी प्रायः अस्वस्थ एवं कमजोर बना रहता है। अतः हर व्यक्ति को प्राप्त समय, शक्ति और योग्यतानुसार अपने-अपने क्षेत्र में भरपूर कठोर परिश्रम करने की आवश्यकता है। सुख चाहने वाले हर व्यक्ति को यह अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि किसी भी क्षेत्र में सफलता पाने के लिए कठोर परिश्रम के अलावा और कोई रास्ता नहीं है। सफलता सदैव कठोर परिश्रमी व्यक्ति का ही वरण करती है।

यहां यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि परिश्रम जिस दिशा में भी हो वह लगन और प्रेमपूर्वक होना चाहिए। आधे-अधूरे मन से परिश्रम करने का परिणाम सदैव आधा-अधूरा ही रहेगा। प्रायः लोगों का मन परिश्रम से कतराता है और किसी की कृपा एवं आशीर्वाद से मनोवांछित फल पाना चाहता है, किन्तु यह कभी संभव नहीं है। लगन, उत्साह एवं प्रेमपूर्वक करने से हर काम पूजा बन जाता है। यदि आप काम करते समय मन में प्रसन्नता, आनंद एवं उल्लास का अनुभव करते रहना चाहते हैं तो चाहे आप घर में, खेत-खलिहान में, दुकान में, दफ्तर या कारखाना में जहां भी काम करते हैं अपने कार्यस्थल को मंदिर समझें और अपने काम को पूजा। अपने कार्यस्थल में जाने के लिए आप जब भी अपने घर से निकलें तब यह न सोचें कि मैं काम करने के लिए दुकान, ऑफिस या कारखाना जा रहा हूं किन्तु यह सोचें कि मैं पूजा करने मंदिर जा रहा हूं, तब हर काम को आप बड़ी प्रसन्नता से कर सकेंगे और काम करते समय आपका मन प्रसन्नता से भरा रहेगा, क्योंकि पूजा करते समय स्वाभाविक ही मन में प्रसन्नता रहती है।

पूजा करते समय आदमी यह कभी नहीं सोचता है कि जिस देवता की मैं पूजा कर रहा हूं वह दूसरे देवता की अपेक्षा छोटा है या बड़ा। आदमी जिस किसी भी देवी-देवता की पूजा-आराधना करता है उसे बड़ा मानकर ही उसकी पूजा-आराधना करता है। इसी प्रकार जब आप किसी भी काम को पूजा समझकर करेंगे तब आपके मन में कभी यह हीन भावना नहीं आयेगी कि मैं जो काम कर रहा हूं वह काम छोटा काम है, किन्तु आप

हर काम को पूरे मन से समर्पित होकर करेंगे और समर्पित होकर काम करने वाले की कभी हार नहीं होती। वह उत्तरोत्तर आगे बढ़ता हुआ सफलता के शिखर पर पहुंच जाता है। इसलिए प्राप्त समय, शक्ति, योग्यतानुसार भरपूर परिश्रम करते रहें। इससे तन भी स्वस्थ रहेगा और मन भी प्रसन्न रहेगा।

2. परिश्रम से प्राप्त फल में पूर्ण संतोष—अपने परिश्रम से आपको जो भी परिणाम-फल प्राप्त हो उसमें पूरा संतोष रखें, उसको कभी कम न समझें। यह समझें कि आपको जो भी परिणाम या फल प्राप्त हुआ है वह आपके परिश्रम के अनुरूप ही प्राप्त हुआ है। जो भी परिणाम या फल प्राप्त हुआ है यदि उसमें संतोष नहीं रखेंगे तो उस परिणाम या फल का आनंद तो ले ही नहीं पायेंगे, आपका मन सदैव खिन्न, उदास और दुखी बना रहेगा। यदि आपको यह लगता है कि आपने जैसे परिणाम या फल की आशा की थी वैसा परिणाम या फल प्राप्त नहीं हुआ है तो यह विचार करें कि मेरे परिश्रम में कहां-क्या त्रुटि-कमी रह गयी है और उस त्रुटि-कमी को समझकर पुनः फिर से समर्पित होकर परिश्रम-पुरुषार्थ करते रहें, किन्तु वर्तमान में जो परिणाम-फल प्राप्त हुआ है उसे सहज भाव से स्वीकार कर संतुष्ट और प्रसन्न रहें। मन में असंतोष एवं शिकायत का भाव न रखें।

संतोष का अर्थ है जो प्राप्त है, अपने पास है उसे कम न समझना और दूसरों के पास जो है उसे देखकर न ललचाना। ललचाने का अर्थ है अपने को छोटा और दरिद्र बना लेना और दरिद्र आदमी कभी खुशहाल जिंदगी नहीं जी सकता। ललचाने से वस्तु बड़ी बन जाती है और आदमी छोटा बन जाता है। ललचाने से वस्तु अधिक महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान हो जाती है और आदमी का अपना महत्त्व एवं मूल्य दोनों घट जाते हैं और जिसने अपना महत्त्व एवं मूल्य स्वयं घटा लिया वह आदमी प्रसन्न एवं सुखी कैसे रह सकता है। इसलिए किसी भी वस्तु को, चाहे वह कितना भी मूल्यवान एवं आकर्षक क्यों न हो देखकर ललचायें न और आपको जो प्राप्त है उसमें पूर्ण संतोष रखकर संतुष्ट रहें। यह सदैव याद रखें—संतोषी सदा सुखी। यह सिर्फ कहावत नहीं है, किन्तु ज्वलंत सत्य है। सद्गुरु कबीर का महावाक्य है 'संतो! संतोष सुख है, रहहु तो हृदय जुड़ाय।' अर्थात हे संतो! संतोष में ही सुख है। यदि तुम संतुष्ट हो जाओ, हर समय, हर परिस्थिति में संतुष्ट रहो तो तुम्हारा जलता हुआ हृदय-मन शीतल-ठंडा हो जायेगा और जिसका हृदय-मन शीतल-ठंडा है वह सदैव सुखी-प्रसन्न ही रहेगा।

असंतोष मन की दरिद्रता है और संतोष संपन्नता। दरिद्र आदमी कभी सच्ची प्रसन्नता का अनुभव नहीं कर पाता, प्रसन्नता का अनुभव तो संतोषी व्यक्ति ही करता है। अतः जो कुछ आपको प्राप्त है उसमें सदैव संतुष्ट रहें और प्राप्त समय, शक्ति, योग्यतानुसार परिश्रम करते रहें। इससे बाह्य भौतिक विकास भी होगा और सब समय मन में प्रसन्नता भी बनी रहेगी। जीवन सुखमय व्यतीत होता रहेगा।

3. साथियों के साथ प्रेम-विश्वासपूर्वक मधुर व्यवहार—बाहर आप कितना भी भौतिक विकास क्यों न कर लें, पद-प्रतिष्ठा आदि से संपन्न क्यों न हो जायें, यदि परिवार के सदस्यों के साथ आपका व्यवहार प्रेम-विश्वासपूर्वक नहीं है, उनके लिए मन में प्रेम-विश्वास नहीं है तो आप कभी सुखपूर्वक जीवन जी नहीं सकते। अतः मन से सारे संदेह और अविश्वास को दूर कर परिवार के सदस्यों के लिए मन में अटूट प्रेम-विश्वास बनाये रखें। ध्यान रखें, वस्तुएं अर्थात धन, जमीन, मकान आदि धन नहीं हैं, धन तो परिवार के सदस्य हैं। इसलिए यदि वस्तुएं टूटती-बिगड़ती हैं तो टूटने-बिगड़ने दें, आपस के प्रेम-विश्वास को कभी टूटने-बिगड़ने न दें। वस्तुएं टूटती-बिगड़ती हैं तो पुनः दूसरी वस्तुएं मिल जायेंगी, किन्तु प्रेम-विश्वास टूट गया तो उसका पुनः मिलना कठिन हो जायेगा। धन का खो जाना घाटा नहीं है, घाटा तो है प्रेम-विश्वास का खो जाना।

धन-वस्तुओं से जीवन का निर्वाह होगा, सुविधाएं मिलेंगी, प्रेम नहीं मिलेगा। प्रेम तो मिलेगा जीवित

प्राणियों से, परिवार के सदस्यों से। धन देकर आप किसी का दिल नहीं जीत सकते और न उसके दिल में अपने लिए जगह बना सकते हैं किन्तु प्रेम-विश्वास देकर आप परिचित-अपरिचित सभी का दिल जीत सकते हैं और सभी के दिल में अपने लिए जगह बना सकते हैं। याद रखें, मिठाई में जो स्थान चीनी (शक्कर) का है तथा नमकीन में जो स्थान नमक का है व्यवहार में वही स्थान प्रेम और विश्वास का है। अतः घर-परिवार के छोटे-बड़े सभी सदस्यों के प्रति अपने मन में निश्छल प्रेम-विश्वास बनाये रखें। यह चिंता और शिकायत न करें कि घर-परिवार के सदस्यों के मन में मेरे लिए प्रेम-विश्वास है या नहीं, किन्तु आप स्वयं सबके साथ अटूट प्रेम और विश्वासपूर्वक व्यवहार करते रहें। दूसरों से प्रेम-विश्वास पाने का सबसे सुंदर उपाय है स्वयं दूसरों को प्रेम-विश्वास देते जाना और उनके लिए प्रेम-विश्वास बनाये रखना।

प्रेम-विश्वास के अभाव में घर, घर नहीं रह जाता अपितु नरक बन जाता है और परस्पर प्रेम-विश्वास के व्यवहार से स्वर्ग। घर-परिवार के सदस्यों को और कुछ दे सकें या न दे सकें प्रेम-विश्वास तो दे ही सकते हैं। इसमें किसी का कुछ घटेगा नहीं, किन्तु सबका मन प्रसन्नता और आनंद से भरा रहेगा। किसी ने बहुत सुंदर कहा है—मृदु वाणी कोमल व्यवहार, सभी सुखों की खान है। प्रेम की गंगा बहे जहां पर, वह घर स्वर्ग समान है।

परिश्रम-पुरुषार्थ तो आप कर ही रहे हैं, घर के सदस्यों को कैसे अधिक-से-अधिक सुविधा मिले इसका भी ध्यान रख रहे हैं, परन्तु आपके मन में घर के सदस्यों के लिए प्रेम-विश्वास नहीं है या आपको लगता है कि घर के सदस्यों के मन में आपके लिए प्रेम-विश्वास नहीं है, उनका प्रेम-विश्वास आपको नहीं मिल रहा है तो सारे भौतिक वैभव-ऐश्वर्यों से संपन्न होने के बाद भी आप सुखी जीवन नहीं जी सकते और न कभी आपका मन प्रसन्न रह सकता है। अतः यदि प्रसन्नता और सुखपूर्वक जीवन जीना चाहते हैं तो घर के सदस्यों के लिए मन में प्रेम-विश्वास बनाये रखें और प्रेम-विश्वासपूर्वक व्यवहार करते रहें।

4. सकारात्मक और सबका हितचिंतन—तन-मन से स्वस्थ रहकर सुखी और प्रसन्न जीवन जीने का सबसे सरल और सुंदर तरीका है सब समय सकारात्मक और सबका हितचिंतन करते रहना। हर मनुष्य का मन हर समय कुछ न कुछ सोचते रहता है और ज्यादातर नकारात्मक बातें और दूसरों की बुराई या त्रुटियों की बातें सोचते रहता है और ऐसा करके वह अपना ही नुकसान करता है। अपने मन की सुख-शांति को नष्ट करते रहता है।

कोई व्यक्ति जान-बूझकर स्वयं अपना नुकसान नहीं करता और न अपने को दुख देता है, परन्तु नकारात्मक बातें एवं दूसरों के अहित-नुकसान की बातें सोच-सोच कर वह स्वयं अपना नुकसान करता चला जाता है और स्वयं अपना दुश्मन बनकर अपने को दुख देता रहता है। आप किसी की भलाई का काम नहीं कर सकते कोई बात नहीं, परन्तु आप दूसरों की भलाई की बात तो सोच सकते हैं। सबका भला हो, सब स्वस्थ और सुखी रहें, सब अपनी-अपनी दिशा में आगे बढ़ते रहें, यह सोचने में आपको कौन-सी रुकावट आ रही है, जो आप ऐसा न सोचकर दूसरों की बुराई की बातें सोच रहे हैं, दूसरों का अहित-चिंतन कर रहे हैं। याद रखें, दूसरों का अहित सोचते रहने से उनका अहित हो या न हो आपका अहित तो जरूर हो रहा है। क्योंकि मनुष्य जैसा सोचता है धीरे-धीरे उसका जीवन वैसा ही बनता चला जाता है। इसलिए यदि सुखी और प्रसन्न जीवन जीना चाहते हैं तो अभी इसी क्षण से दूसरों का अहित सोचना बंद कर दें और सबकी भलाई की बातें सोचना शुरू कर दें।

कोई भी व्यक्ति नकारात्मक और दूसरों की बुराई तथा नुकसान की बातें तभी सोचता है जब उसका मन मलिन और विकारी होता है और जिसका मन ही मलिन तथा विकारी है वह दुनिया का सारा वैभव पाकर भी सुखी और प्रसन्न नहीं रह सकता। सब कुछ बिगड़ जाये तो बिगड़ जाये अपने मन को न बिगड़ने दें। क्योंकि

यदि मन बिगड़ गया तो पूरा जीवन बिगड़ जायेगा। दुनिया का बड़ा-सा बड़ा घाटा उठाकर यदि घर-परिवार के सदस्यों में प्रेम-विश्वास बनाये रखा जा सकता है और साथ ही अपने मन को तथा मन के विचारों को संयत, शुद्ध और पवित्र बनाये रखा जा सकता है तो भौतिक वस्तुओं का घाटा, घाटा नहीं है। सबसे बड़ा घाटा तो घर-परिवार के सदस्यों का परस्पर का प्रेम-विश्वास छुट जाना और मन का बिगड़ जाना है। अतः अपनी भलाई एवं सुख-शांति के लिए दूसरी की भलाई की बातें सोचते रहें तथा निरंतर सबकी कल्याण-कामना करते रहें और साथ ही हर विषय में सकारात्मक चिंतन करते रहें।

सकारात्मक चिंतन ऐसा टॉनिक है जो मनुष्य के तन-मन दोनों को स्वस्थ और बलवान बनाये रखता है। इसीलिए सकारात्मक सोच रखने वाला व्यक्ति हर परिस्थिति में शांत-प्रसन्न एवं सुखी रहता है। उसके जीवन से निराशा, हताशा और दुख सदा के लिए विदा हो जाते हैं।

एक बात और याद रखें लोग आपके बारे में क्या कहते हैं इसकी चिंता कभी न करें। आप तो सदैव सत्कार्य में लगे रहें। हां, यह ध्यान अवश्य रखें कि मेरे कार्य-व्यवहार से किसी को कोई दुख-तकलीफ-हानि न पहुंचे और मेरे मन में किसी के लिए दुर्भावना न पैदा हो। दूसरों के बारे में जब भी सोचना हो सदा दूसरों के हित के बात सोचें, उनकी कल्याण-कामना करते रहें।

प्राप्त समय, शक्ति और योग्यतानुसार समर्पित भाव से भरपूर परिश्रम करने वाला, जो प्राप्त है उसमें सदैव संतुष्ट रहने वाला, घर-परिवार के सदस्यों-साथियों के प्रति निश्छल प्रेम-विश्वास रखने वाला और हर समय सकारात्मक तथा सबका हितचिंतन करते रहने वाला व्यक्ति तन-मन से स्वस्थ तो रहता ही है, सबके साथ उसका व्यवहार भी प्रेमपूर्ण रहता है तथा उसका जीवन भी प्रसन्नता एवं सुखपूर्वक व्यतीत होता है। यही सबके लिए सुंदर व्यवहार एवं सुखी जीवन का मार्ग है।

—धर्मेन्द्र दास

आओ धर्म की कुछ बातें कर लें

रचयिता—हेमंत हरिलाल साहू

मंदिर मस्जिद पूजा गृह हैं,
धर्म भक्ति का है स्थल।
जहां जाने मात्र से ही,
पवित्र होता है अंतःस्थल।

निज स्वारथ वश भूलकर मानव,
क्यों बना लिया राजनीतिक अखाड़ा।
निर्मल पावन प्रकृत का दामन,
ऐ मानव किसने है उजाड़ा।

ना हिन्दू धरम ना मुस्लिम धरम,
ये तो मत मजहब है भाई।
धरम सदा जो सबको जोड़े,
मत मजहब की है लड़ाई।

भूख लगे तो भोजन कर ले,
जल से तृषा बुझाई।
नींद लगे तो खाट पकड़ ले,
ये तन का धरम है भाई।

क्षमा शील संतोष धरम है,
सत्य अहिंसा सदाचार,
जीवन पथ विश्वास धरम है,
कभी न बिसरे शिष्टाचार।

सच्चा धर्म है मानवता,
एक दूजे का सम्मान करे।
जीओ और जीने दो,
ये महामंत्र गुणगान करे।

मेरे मन वाणी कर्मों से,
कभी ना किसी को हो संताप।
मृदु वाणी सुंदर बरताव,
हर लेती जीवन के सारे ताप।

धर्म पथ पर रहो तत्पर,
तो कभी ना होगी ग्लानी।
खोकर मन वाणी कर्मों का संयम,
पक्षताते हैं अभिमानी।

मानव जीवन प्रकृति का,
एक अनुपम उपहार है।
जैसी करनी वैसी भरनी,
धर्मग्रंथों का यही सार है।

मानव जनम अमोल है साथी,
आओ धर्म की कुछ बात कर लें।
मानवता का दामन थामकर,
गैरों की पीड़ा हम हर लें।

कहानी

स्नेहिल प्रेम

लेखक—दीनेन्द्र दास

नेहा की ज़िद ने रामसाय को झुका दिया। उनकी पकड़ ढीली हो गयी। पत्नी सुलोचना भी बार-बार यही कह रही थी, कि एक बार जाकर तो देखो वे लोग जाग रहे होंगे। रात्रि के करीब दस बज गये थे। रामसाय पूरी तरह घबराया हुआ था कि उनके घर कौन-सा मुंह लेकर जाऊं। मन में तो कालिख भरा हुआ था। उसे हिम्मत नहीं हो रही थी वहां जाने की कि पता नहीं वे क्या कर देंगे। वह अनमने मन घर से बाहर निकला और उनके घर के दरवाजे तक पहुंचकर एक मिनट तक लंबी सांस ली फिर साहस बटोरकर दरवाजा खटखटाया।

खट्-खट् की आवाज सुनकर सोनसाय ने अंदर से आवाज दिया—'कौन है? इतनी रात कैसे?' रामसाय बोला—'मैं...मैं... मैं...!' उसे पूरा भय सवार था कि मेरा नाम सुनते ही दरवाजा नहीं खोलेंगे। 'कौन है? कौन... पूरा नाम साफ-साफ क्यों नहीं बताते!' कहते हुए सोनसाय ने दरवाजा खोला तो रामसाय को सामने देखकर आग बबूला हो गया। समझा कि यह मुझे मारने आया है। वह सावधान हो गया और पास में रखी हुई लाठी उठा ली और तेज स्वर में बोला—'तुम्हें यहां देर रात आने की हिम्मत कैसे हुई? तुम मेरे सबसे बड़े शत्रु हो...' रामसाय सीधे सोनसाय के चरणों में गिर पड़ा। उसके नेत्रों से अश्रु की धारा बहने लगी थी। वह रोते हुए बोला—'भैय्या! आप मुझे मारे चाहे बचाएं, मैं आपके सामने हूं, पर एक बात मेरी सुन लीजिये। मेरी बेटी नेहा को...नेहा को...!' बीच में बात काटते हुए आश्चर्य से सोनसाय ने कहा—'क्या हुआ नेहा को! नेहा ठीक तो है?' 'बस एक बार नेहा को विशाल से मिलवा दीजिए, सब ठीक हो जायेगा।'

कुछ समय पहले ही बिस्तर पर छटपटाते हुए विशाल का दिल यही कह रहा था कि मेरे बाप ने मेरा नाम विशाल जरूर रखा है, पर अपना हृदय विशाल नहीं बना पाये। आज भी वे संकुचित विचार रखते हैं। रामसाय की बात सुनकर सोनसाय की मस्तक पर चढ़ी त्योरी डाउन हो गयी। उसके अंतरंग में हुआ कि अभी मैं नाहक ही अपने छोटे भाई को मार डालता। उसके हाथ की लाठी छूट गयी। वह असमंजस में पड़ गया। तभी सोनसाय की आवाज सुनकर उसकी पत्नी शकुंतला घर से बाहर निकली और बोली—'आज विशाल का भी यही हाल है। वह दिन भर घर में उदास पड़ा है। कुछ खाया-पिया भी नहीं, सुबह से अभी तक नेहा का नाम जप रहा है। अभी भी आंसू बहाते बिस्तर पर पड़ा हुआ है। सयानों की दुश्मनी का अभिशाप इन बच्चों को क्यों दें? हम बच्चों के स्नेहिल प्रेम को कुचलना चाहते हैं। खिले हुए फूलों को मुरझा देना चाहते हैं, यह हमारी सबसे बड़ी कमी है।' शकुंतला ने हिम्मत की और रामसाय से बोली—'भाई साहब! आप घर जाकर नेहा बेटी को ले आइए।'

"जी भाभी!" कहते हुए रामसाय आंसू पोंछते हुए घर चला गया।

सोनसाय और रामसाय दोनों भाई थे। घर से बाहर कहीं भी जाते तो दो चेहरे होते थे। एक दूसरे के बिना एक पल भी रह नहीं पाते थे। अमन-चैन की जिंदगी बीत रही थी। बहुओं में भी कोई मनमुटाव न था। दिन बीतते गये। भाइयों में कुछ बातों को लेकर खटास पैदा हो गयी। बात बढ़ती गयी और कुछ ही दिनों में जमीन, जायदाद, दुकान-मकान मेरी-तेरी की भावना में सब कुछ दो टुकड़े हो गये। इसके बावजूद भी किसी को संतुष्टि नहीं थी। छोटी-छोटी बातों को वे तिल का ताड़ बनाने लग जाते थे। दोनों में तू-तू, मैं-मैं इतनी बढ़ गयी थी कि एक दूसरे के खून के प्यासे हो गये। एक

दूसरे की परछाई देखना पाप समझते थे। ऐसी कटाकटी दुश्मनी वर्षों से झेल रहे थे। किसी को चैन नहीं। सोनसाय कहता था—'भले ही काटे आम में बौर आ जाये और फटा कान जुड़ जाये पर मैं अपने भाई के साथ इस जन्म में जुड़ नहीं सकता।'

बड़े भाई सोनसाय का एकलौता सुपुत्र विशाल था और छोटे भाई रामसाय की एक ही सुपुत्री नेहा थी। जो विशाल से उम्र में एक वर्ष छोटी थी। बचपन में दोनों बच्चे एक थाली में खाते थे। साथ-साथ खेले-कूदे, लड़े-झगड़े पर दोनों में प्रगाढ़ स्नेह था। एक दूसरे के बिना रह नहीं पाते थे। भाइयों में बंटवारा होने के बाद वे लोग विशाल और नेहा के दिलों को भी बांटना चाहते थे। इसलिए दोनों के मां-बाप ने उन्हें एक दूसरे से मिलने पर प्रतिबंध लगा दिया था पर दोनों के हृदयस्पर्शी स्नेहिल प्रेम के आगे मां-बाप की फटकार उन्हें डिगा नहीं पाये। एक ही स्कूल में पढ़ने की वजह से दोनों का मिलना आसान था।

सावन की पूर्णिमा थी। रात में हलकी बारिश हो रही थी। आकाश में काली घटा छाई हुई थी। वैसे ही नेहा के मन में उदासी छाई हुई थी। वह बिस्तर पर बदहवास जैसी पड़ी थी। मानो कई दिनों से उपवास हो और शरीर जीर्ण हो गया था। उसके अंतःपटल पर एक ही बात उभर कर आ रही थी कि पिताजी एवं बड़े पिताजी को हो क्या गया है? उन्हें लड़ने में ही आनंद आता है। उन्हें यही तो मिलता है, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा एवं नफरत की आग में रात-दिन जलते रहना। अपने-अपने जीवन को कंटकाकीर्ण बनाये रखना, मानो दोनों की नियति हो गयी है। शांति से जीना जानते ही नहीं हैं! इन्हें कौन समझाये? अपने-अपने अहंकार की वजह से एक दूसरे के सामने झुकना ही नहीं चाहते हैं। नेहा सोच ही रही थी तभी उसके पिता ने नेहा के सिर पर हाथ रखते हुए कहा—'बेटी! तुम विशाल से मिलना चाहती हो न! तो जल्दी तैयार हो जाओ। विशाल के यहां चलना है।' नेहा तो यही शब्द सुनने के लिए तरस रही थी। उसका मन गदगद हो गया। वह भूल ही गयी कि आज सुबह घर से बाहर जाते देखकर पिता ने मुझे खूब डांटा था कि तुम दुश्मन के घर नहीं जाओगे। भाई दुश्मन है, तो भतीजा भी दुश्मन हुआ। पिता की डांट-फटकार से नेहा दिनभर मानसिक पीड़ा से पीड़ित थी। वह विशाल का नाम सुनते ही झटपट पलंग से उठ खड़ी हुई और पूजा सामग्री की तैयारी करने लगी, नये कपड़े पहनी और अपने मां-बाप के साथ चल पड़ी विशाल के घर की ओर...! विशाल के घर के लोग भी राह जोह रहे थे।

विशाल के घर तीनों के प्रवेश करते ही मानो वहां की बुझी हुई बत्ती पुनः जल उठी। सबके हृदय के अंदर का अंधकार छंटकर प्रकाश में बदल गया और एक बार सबके चेहरे खिल उठे, होठों में मुस्कुराहट आ गयी। ऐसा लग रहा था मानो सबको अपनी खोई हुई दौलत मिल गयी हो। नेहा की खुशी का ठिकाना नहीं रहा।

सामने सोफा पर बैठा विशाल भी मंद-मंद मुस्कुरा रहा था। सबके मन आह्लादित थे। आज वर्षों बाद भाई-बहन के स्नेहिल प्रेम ने परिवार के वर्षों की नफरत को प्यार में बदल दिया।

नेहा सर्वप्रथम अपने बड़े भाई विशाल के चरण पखारे, मस्तक पर तिलक लगाई, फूलमाला पहनाई फिर विशाल के वर्षों से सूनी पड़ी कलाई पर राखी बांधी और उनकी आरती उतारी, तत्पश्चात अपने हाथ से मिठाई खिलाई। विशाल ने भी अपनी बहन नेहा का मुंह मीठा किया और कपड़े एवं रुपये भेंट दी। फिर बोला—'मेरी प्यारी बहन नेहा! मैं जीवन भर तुम्हारी रक्षा करूंगा। तुम्हारी खुशी हमारी खुशी होगी।'

सोनसाय एवं रामसाय दोनों भाइयों की अश्रुधारा के साथ 15 साल पुरानी दुश्मनी बह गयी और सबके हृदय में प्रेम एवं करुणा की तरंगें उठने लगी। देवरानी-जेठानी भी वर्षों के द्वेष को दफना कर प्यार से गले मिले।

रक्षाबंधन के पावन पर्व पर भाई-बहन के स्नेहिल प्रेम ने अपने-अपने मां-बाप को मिला दिया। ❑

परमार्थ पथ

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले

सदाचार-संयम का अर्थ है वर्तमान में सुखी रहना, लंबे समय तक जीना नहीं। बोधवान को चाहिए कि वह सबसे निष्काम होकर निर्विकल्प-समाधि के अभ्यास में जीवन व्यतीत करे। इस कूड़ेदान संसार में उसका कुछ नहीं है। स्ववश मन वाला समाधि में जीता है और निष्काम व्यक्ति स्ववश मन वाला होता है।

ज्ञान का तात्पर्य यही है कि किसी संपत्ति-विपत्ति पर आंदोलित न होना। सारी घटनाएं कुछ दिनों में पुरानी होकर मर जाती हैं। समझदार शांत रहता है।

* * *

जीवन की यात्रा में बहुत से प्रेमी मिले, परंतु साथ में कोई न रहा। जो साथ में रहते हुए लगते हैं वे भी न रहेंगे। जो देह अपनी मानी जाती है वह भी साथ में नहीं रहेगी। कोई भी दृश्य-पदार्थ नहीं रहता है। द्रष्टा स्वयं है जो सदा साथ है, क्योंकि वह मैं हूं। अतएव मिले हुए का मोह न कर अनमिल, असंग, स्वस्वरूप में ही अनुराग करना चाहिए, जो कभी बिछुड़ने वाला नहीं है। वासना-हीन मौन ही मोक्ष-पथ है। जिन बातों से मन में उद्वेग आये, उनसे सदैव बचना चाहिए। उद्वेगहीन शांत रहकर स्वरूपस्थिति होती है। तुम्हारी सारी भौतिक उपलब्धि झूठी है। सब कुछ को भूलकर आत्मशांति ही सच्ची उपलब्धि है।

* * *

यात्रा में बहुत-से प्राणी, पदार्थ और परिस्थितियों की दृश्यावलियां मिलती हैं, परंतु कुछ स्थिर नहीं रहती। द्रष्टा दृश्यों से प्रभावित न होकर अनुद्वेग शांत रहे, यही उसका द्रष्टा होने की सार्थकता है। द्रष्टा दृश्यों में भूलकर उनमें बह जाये तो यह उसका पतन है। द्रष्टा के अपने स्वभाव की सार्थकता उदासीनता में है। अंततः कुछ साथ में रह नहीं जाता, फिर किसी जड़-दृश्य में क्यों उलझा जाये! सब जगह नियम में पक्के रहो।

* * *

कम खाना अमृत है। कम बोलना अमृत है। कम सोचना अमृत है। कम व्यवहार अमृत है। कम लोगों से मिलना अमृत है। सारा सम्बन्ध असत है। क्योंकि वह अनात्म और अनित्य है। जीव स्वतः अकेला है। आज का सारा झमेला स्वप्नवत खो जाने वाला है। अतएव जीवन के सारे हानि-लाभ झूठे हैं। सच्ची हानि है अनात्मा में मोह बना रहना और आत्मा में अनुराग न रहना। सच्चा लाभ है अनात्मा का मोह मिटकर आत्मा में प्रगाढ़ अनुराग बना रहना। आज-कल में अपना माना हुआ शरीर सदैव के लिए लुप्त हो जायेगा, फिर क्या शेष रहेगा? आत्म अस्तित्व मात्र। अतएव सारे छूटने वाले अनात्म पदार्थों का मोह त्यागकर केवल आत्मा में ही अनुराग करना चाहिए। आत्मज्ञान, आत्मसंयम, आत्मविश्वास और आत्म-रति ही जीवन का फल है।

* * *

एक छिहत्तर (76) वर्ष के गंवई बूढ़े ने मुझसे कहा, "मुझे पुनर्जन्म-सिद्धान्त के विषय में समझाइए। कुछ लोग कहते हैं कि हमें पहले जन्म का स्मरण होता है। वह क्या है? उसके विषय में समझाइए जो मेरे गले उतर सके, सुनी-सुनाई बात न कहिएगा, अनुभवसिद्ध कहिएगा।" उक्त बूढ़े की बात सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। गांव के अल्प शिक्षित मनुष्य इतना तर्कपूर्ण विचार रख सकते हैं। कितने शहरी तथा अधिक शिक्षित हद दर्जे के पोंगापन्थी होते हैं। मैंने कहा—पुनर्जन्म सिद्धान्त परम सच्चाई है। तथाकथित ईश्वर ने बिना जीवों के कर्म किये उन्हें सुखी-दुखी बना दिया, यह बात तर्कहीन है। रहा पूर्वजन्म का स्मरण, वह मुझे नहीं है; और जो लोग बताते हैं कि हमें पूर्वजन्म की याद है, उनसे मेरा साक्षात्कार नहीं हुआ है कि उनकी बातों की परख कर सकता। इसलिए उसके विषय में कुछ नहीं कह सकता।

* * *

संसार से पूरा थक जाने पर दूसरी थकान नहीं रह जाती है। वैसे शरीर की थकान समय से सबको होती

है। देह और उससे होनेवाले सम्बन्ध सब क्षणिक हैं, स्वप्नवत हैं। और सदैव के लिए शून्य हो जाने वाले हैं; किन्तु मेरा अस्तित्व अनादि-अनन्त है। मेरा स्वरूप प्रकृति-विकृति शून्य है। उसमें न प्रकृति है और न विकृति और न कोई दुख। वह तो परम दिव्य है। जीवन में होने वाली सभी घटनाओं को क्षणिक समझकर सब समय समता, क्षमा, दया, सहन, सन्तोष और धीरज से जीवन व्यतीत करना चाहिए। 'मन मस्त हुआ तब क्यों बोले' वासनाहीन मौन!

* * *

अहो, हम अनात्म, अनित्य, दुखपूर्ण जड़दृश्य में मोहकर जन्म, जरा, मरण तथा इनके बीच अनेक दुख-द्वन्द्वों में अनादि काल से संतप्त होते आ रहे हैं। आज तक हमें अपने अक्षय, निर्विकार, दुखहीन एवं परम शान्तिमय स्वरूप का भान न हुआ। आज इसका बोध हुआ है। अब हम सावधान हो जायें। जो कुछ मिला है शरीर से संसार तक सब सर्वथा झूठा है, क्योंकि वह बदल जाने वाला और सदा के लिए छूट जाने वाला है। जो मेरे साथ रहने वाला नहीं है, उसमें मोह क्यों? इस जीवन के मध्य में मैंने अनेक ऐश्वर्यवान, बलवान, प्रभुताशाली-विद्वान तथा सबको कंपा देने वाले आतंकी को देखा है, आज वे आकाश कुसुम के समान शून्य हैं। जिस संसार में किसी का कुछ नहीं है वहां किस प्राणी, पदार्थ और परिस्थिति की अहन्ता और ममता की जाये। वस्तुतः अपने से अभिन्न नित्य स्वस्वरूप चेतन आत्मा में ही अनुराग करना चाहिए।

* * *

संकल्प-शून्यता साधना का चरमोत्कर्ष है जो मुक्तिदशा है और जीवन का सर्वोच्च सुख है। संकल्प शून्य अवस्था में स्वयं सत्ता ही शेष रह जाती है जो निज आत्मतत्त्व है। वही तो सदैव अपने पास है; बाकी तो मिलने-जुलने का तमाशा है जो देहोपाधिवश है। देह-सम्बन्ध से ही संसार का भान है; अन्यथा मेरे में जगत का कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं निराला हूं, अकेला हूं, आत्मतृप्त हूं, स्वयं शाश्वत सुखी हूं। मेरे में दुख का लेश नहीं है। मुक्ति-इच्छुक को चाहिए कि वह देहाध्यास का त्याग करे। देह मल का थैला और जड़ है। इसका अंत होकर मिट्टी में मिल जाना पक्का है। अहो, अविद्यावश जो शरीर अपना स्वरूप लगता है, वह अनात्म है, मिट्टी है, आज-कल में बिखरकर मिट्टी में मिल जायेगा।

* * *

सुबह जलपान कितना लेना है या बिलकुल नहीं लेना है, इसका मूल्यांकन दोपहर का भोजन करने के समय कड़ी भूख लगने से तौलना चाहिए। दोपहर में खाने के समय कड़ी भूख होना चाहिए। इसी ढंग से सुबह का जलपान लेना, न लेना तथा कितना लेना तौलना चाहिए। यदि शाम को खाना है, कड़ी भूख उस समय भी होना चाहिए। यदि कड़ी भूख नहीं है, तो भूख के अनुसार ही आहार हलका लेना चाहिए। यह सबकी भी तौल है बंधकर खुला शौच उतर जाना। यदि टट्टी पतली या ढीली है, तो पेट में भोजन अधिक गया है। पेट में अधिक भोजन जाने से शरीर में बल नहीं बढ़ता, अपितु ठीक से पचने तथा बंधकर टट्टी साफ उतर जाने से शरीर में बल बढ़ता रहता है। कम खाने में विश्वास करना चाहिए और जिह्वा देवी जो बड़ी लंपट है, उसे वश में रखना चाहिए।

* * *

मनुष्यों में देव हैं, ईश्वर हैं और शैतान हैं। किसी कवि ने कहा है—"जानवर आदमी फरिश्ता खुदा, आदमी की भी हैं सैकड़ों किसमें।" बहुत सम्हलकर चलो। सज्जनों में भी ममता न करो और दुर्जनों से सावधान रहो। "मैत्री करुणा मुदिता उपेक्षाणाम् सुख दुःख पुण्य अपुण्य विषयानाम् भावनातः चित्त प्रसादनम्।" (योग दर्शन 1/33) सुखी, दुखी, पुण्यात्मा तथा पापात्मा के प्रति क्रमशः मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा की भावना करने से मन निर्मल रहता है। यह सीख ही साधक को सुख दे सकती है। दुष्टों से उलझकर तो दुख में फंसना है उनकी उपेक्षा कर देना चाहिए। स्वयं किसी से मोह न बनावे और वैर न बनावे। समता, सहनशील से जीवन व्यतीत करे। सर्वत्र सिर झुकाकर चलने वाले को कहीं दुख नहीं है।

कहानी

प्रेम की जीत

लेखक—श्री श्यामल बिहारी महतो

सुबह का समय था। बाहर से मेरे कुछ दोस्त आये हुए थे। कुछ खाने-पीने के बाद हम साथ बैठे चाय पी रहे थे। तभी हमने देखा दुखना घर आ गया है। वहीं से मैंने उसे आवाज दी—'अरे दुखना!'

तब वह पानी पी रहा था।

'आप अरे कह कर बुलाते हैं, उसे बुरा नहीं लगता है ?'

एक दोस्त ने एतराज जताया।

'उसके जन्म के तीसरे दिन से ही हम सभी उसे इसी नाम से पुकारते-बुलाते हैं। कभी उसने बुरा नहीं माना।'

'तो क्या जन्म के बाद ही आपने उसका यह नामकरण कर दिया था ?'

'हां, उसके जन्म के तीसरे दिन ही यह नाम रखा गया था। तब से वह इसी नाम से जाना जाता है !'

'कहां गया, आया नहीं ...?'

'आ जायेगा, अभी वह कुछ खा रहा है !'

'अपने बेटे का इस तरह का नाम सुनकर उसकी मां को बुरा नहीं लगता, वह आपत्ति नहीं करती है ?

'अब वह इस दुनिया में नहीं रही!'

'ओह, सॉरी! हमें मालूम नहीं था', दूसरे ने अफसोस जाहिर किया था।

'कायल रथलाल घार छठियारी लागो!' गांव की ठकुराइन दीदी सहसा आंगन में टपक पड़ी।

'अबकी क्या हुआ दीदी ..?' मैंने जानना चाहा।

'आर कि हतअ! फेर बेटिये भेलअ तो!' लगा बेटी होने से ठकुराइन दीदी भी खुश नहीं थी।

'चार तो हो गयी। तुम लोग उसे कुछ समझाती नहीं। बेटियां आज बेटों से पीछे नहीं हैं—बहुत आगे बढ़ रही हैं!'

'हमनी कि कहबअ बाबा! ओकरा नाय पिराय है तो हमरा कि जाय...!' मुंह में अंचरा ठूंस वह हंसते बाहर निकल गयी।

उसके जाते रविदास टोला का रति रविदास पहुंच गया। प्रणाम कर बगल कोने में खड़ा हो गया।

'क्या बात है ? सुबह, सुबह...!'

'फिर दोनों बचवन के स्कूल में नाम कयट गेलअ...!'

'काहे कटा...? पिछली बार हमने कहा था न कि समय पर महिना पैसा जमा कर देना। फिर...?'

'कुआं में काम करल हलिये, तीन महीना से पैसे नाय देल है कि करबअ ...!'

'कितना लगेगा ...?'

'दोनों के सतरह सौ...!'

'आगे से कटना नाय चाही, फिर हमरे पास मत आना। लो जाओ..!'

पांव छू प्रणाम कर रति चला गया। यह देख एक दोस्त का माथा चकरा गया। बोला—'इन लोगों का भी आपके पास आना होता है..?'

'इन लोगों से क्या मतलब है आपका ? अरे, ये भी इंसान हैं। इन्हें भी समाज में पूरा-पूरा जीने का हक है!'

'फिर भी ऐसे लोगों को अपने से दूर ही रखना चाहिए...!'

'मैं जाति भेद को नहीं मानता हूं। आपको पता है...!' मैं थोड़ा गंभीर हो उठा था—'दुखना की मां मरी थी तब यही लोग सबसे पहले मेरे घर पहुंचे थे..। भाई ने बताया था।'

'फिर भी ...!'

'दुखना की मां को गुजरे कितने साल हो गये?' तीसरे दोस्त ने दुखना की मां से फिर जोड़ दिया था।

'चार साल बीत चुका है, पांचवां साल चल रहा है...!'

एक दोस्त बोला—

'आप दूसरी शादी क्यों नहीं कर लेते हैं? अभी आपकी उम्र ही क्या हुई है। चालीस में भी चौंतीस के लगते हैं—गबरू जवान हैं! खूबसूरत हैं! पचीस-तीस की कोई भी लड़की आप पर फिदा हो सकती है! कहें तो मैं खोज शुरू कर दूं !'

'बाबूजी, आप लोग नहा-धोकर खाना खायेंगे या ऐसे ही, खाना बनकर रेडी है?' पायल बेटी ने आकर पूछा।

'मैं तो नहा-धो लिया हूं बेटे, और चाचा लोग भी नहाये से लग रहे हैं ....!'

'हां-हां, हम दोनों भी फ्रेश होकर ही घर से निकले हैं—बाकी खाना खा लेंगे ...!'

तीसरे ने कहा—'ऐसा करो, थोड़ी देर बाद खाना लगा देना... ठीक है!'

'ठीक है बाबूजी...!' पायल चली गयी तो दूसरे ने कहना शुरू किया—'मैं कह रहा था कि, दोनों बेटी बड़ी हो रही हैं। कल इनकी शादी-बिहा हो जायेगी तो दोनों अपने-अपने घर चली जायेंगी। बड़ा बेटा अभी बाहर पढ़ रहा है। जाहिर है इंजीनियरिंग कर लेने के बाद वह भी घर में बैठा नहीं रहेगा। कहीं न कहीं जॉब लग ही जायेगी उसे। उस हालत में आप तो बिल्कुल अकेले हो जायेंगे। तब यह घर भांय-भांय लगने लगेगा। भोजन-पानी में भी परेशानी होगी। आपको शादी कर लेने में कोई बुराई नहीं है ..!'

'मैं इसकी बात से सहमत हूं। एक उम्र होती है। अभी सब कुछ आपके पक्ष में है। समय निकल जाने के बाद लोग बहुत तरह के सवाल उठाने लगते हैं ..!'

'वैसे दुखना की मां को हुआ क्या था...?'

'बुढ़ापा...!' मैंने मुस्कराते हुए कहा।

'हम कुछ समझे नहीं !' दोनों एक साथ बोल उठे थे।

मैंने कहना जारी रखा—'जब मैंने उसे घर लाया था तो भरपूर जवान थी—एकदम सिलसिल बाछी! और बहुत गुस्सेल भी। पर मैं उसे बहुत चाहता था। वह भी यहां आकर बेहद खुश थी। देखते-देखते उसने मेरे घर में खुशियों की एक संसार बसा ली। परन्तु मन की बड़ी स्वाभिमानी थी। बाहर देह पर हाथ तक रखने नहीं देती थी लेकिन घर आते ही पूर्ण समर्पित! अपने बच्चों के प्रति उसका स्नेह और लगाव भी बेजोड़ था। हर हमेशा उन सबको अंकवारे चलती। पुचकारते-चाटते-चुमते चलती। कभी अपनों से उन सबको अलग होने नहीं देती थी। एक बात और, उसे आवारा कुत्तों से सख्त नफरत थी। कभी सामने आ जाते तो वो उस पर ऐसे झपटती मानो कूट कर रख देगी। बेटा-बेटी सब तो उसे मिल गया था। पर वह परिवार नियोजन के पक्ष में कभी नहीं रही। तभी वह दिन आ गये और दुखना के जन्म के बाद वह बीमार पड़ गयी। हमने ब्लॉक लेबल के बड़े डॉक्टर को बुलाया। वह आया भी। देखते ही कहा—'यह काफी कमजोर हो गयी है।' और उसने कुछ टेबलेट लिखे, दो सूई लगाई और तीन फाइल सीरप लिख कर बोले—'इसे मंगा कर घंटा-घंटा के अंतराल में तीनों फाइल सीरप पिला दीजिए....!'

'एक ही दिन में तीन फाइल सीरप....?' दूसरे ने आश्चर्य व्यक्त किया तो मैंने कहा—'मेरा भी यही सवाल था..!' तब डॉक्टर ने कहा—'इसके शरीर में हिमोग्लोबिन की घोर कमी हो गयी है। बच्चा होने के बाद और कमजोर हो गयी है...! सीरप से शरीर में ब्लड की मात्रा बढ़ जायेगी और यह धीरे-धीरे रिकवर करने लगेगी।'

'फिर क्या हुआ...?' तीसरे ने आंगन की ओर देखते हुए कहा।

'दवा मंगा कर मैंने वही किया जो डॉक्टर ने कहा। सीरप पिला दी और मैं धनबाद चला गया। भाई को बोल रखा कि वह उस पर ध्यान रखे। मैं रात को लौट न सका। भाई रात नौ बजे फोन किया—'दुखना की मां अब नहीं रही।' मैं रात को ही घर लौट आता पर उस दिन सुबह से जो बारिश शुरू हुई वह रात भर बंद नहीं हुई। दोस्तों ने भारी बारिश में घर लौटने से मना कर

दिया। मैंने भाई से कहा—'अब जो होना था वह तो हो गया। सुबह सब जुगाड़ कर रखना। मैं समय पर पहुंच जाऊंगा...!'

इसी बीच बेटी पायल ने खाने के लिए फिर आवाज लगा दी।

'अब चलो खा ही लेते हैं...!' और तीनों खाने बैठ गये।

खाने के बाद मैंने दुखना को फिर आवाज दी—'दुखना, अरे वो दुखना...' इस बार दुखना दौड़ा चला आया।

'आपने पहले भी 'दुखना' बोल के आवाज दी थी तब भी वह नहीं आया था !' तीसरे ने कहा—'इस बार भी नहीं आया? उसकी जगह यह बछड़ा दौड़ा चला आया है। हम दुखना से मिलना चाहते हैं। उसको बुलाइए न...!'

'यही तो हमारा दुखना है !' और मैं दुखना के गले को सहलाने लगा!

'क्या...? यही वह दुखना है?' दोनों मित्र एक साथ उछल पड़े थे!

'मतलब इस बछड़े का नाम दुखना है?

'और जो आपने हमें कहानी सुनाई वह गाय इस दुखना की मां थी?'

'अभी तक आप हमें इसी बछड़े की मां की कहानी सुना रहे थे ' तीसरा का ताज्जूब भरा स्वर फूटा।

'हम तो समझ रहे थे आप हमें अपनी पत्नी के बारे में बता रहे हैं ... गजब ! मैं अचंभित हूं! आपके इस साइकोलॉजी देखकर! फिर पायल की मां कहां है....?'

'पायल बेटे, मां को भेजो ...!' मैंने आवाज़ दी।

'यह सब दुखना को दे दो...कब से मेरा मुंह ताक रहा है।' आने पर मैंने पत्नी से कहा।

सभी बचा-खुचा खाना एक गमले में दुखना के आगे डाल दिया गया। वह मजे से खाने लगा!

''जब एक जानवर के प्रति आपका इतना प्रेम है तो रति रविदास तो फिर भी आदमी है'' पहली बार एक दोस्त ने मुंह खोला था। वह अब भी दुखना को अजूबे प्राणी के रूप में देख रहा था।

'मुझे तो यह एक अविस्मरणीय जानवर मालूम पड़ता है' दूसरा बोला था।

'मैं तो अभी भी आश्चर्यचकित हूं। एक जानवर जिसे अपना नाम मालूम है। और पुकार सुनकर वह दौड़ा चला आता है। प्रेम और स्नेह का अद्भुत कांबिनेशन !'

'जानवर मुंह से कुछ बोल नहीं सकता है पर प्रेम की परिभाषा तो समझता है। अपनी भाव-भंगिमाओं से वह अपनी खुशी और दु:ख को व्यक्त कर देता है !'

इस बीच दुखना खाना समाप्त कर मेरे पास आया और मेरा हाथ चाटने लगा। उसका भाव बता रहा था और वह कहना चाहता था कि आप न होते तो आज हम नहीं होते। तीनों दोस्त जल्दी-जल्दी अपने मोबाइल से हम दोनों का फोटो शूट करने लगे थे।

गजल

रचयिता—श्री रमेशचन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

दुनिया हमसे पूछती है क्या कहें हम?
कुछ न हमको सूझती है क्या कहें हम?

जिन्दगी भर लोग जूझे जगत भर से
वह स्वयं से जूझती है क्या कहें हम?

लक्ष्य पाना इस तरह समझो असंभव
दिन में भी जो ऊँघती है क्या कहें हम?

क्यों नहीं समझा उसी अभी तक तू गूफा में?
आवाज खुद की गूँजती है क्या कहें हम?

चेतना की ओर किसका ध्यान जाता?
वृत्ति तो बस घूमती है क्या कहें हम?

आज जन पूछे न त्यागी-तपस्वियों को
जगती धन को पूजती है क्या कहें हम?

मत गरीबी का करो अपमान भाई!
वोट-हित क्या सूझती है क्या कहें हम?

सब रसों से बहुत बढ़कर है सृजन-रस
लेखनी भी झूमती है क्या कहें हम?

बीजक चिंतन

मनुष्य सबसे श्रेष्ठ है

शब्द-112

झगरा एक बढ़ो राजाराम, जो निरुवारे सो निर्बान॥
ब्रह्म बड़ा कि जहाँ से आया, बेद बड़ा कि जिन्ह उपजाया॥
ई मन बड़ा कि जेहि मन माना, राम बड़ा कि रामहि जाना॥
भ्रमि भ्रमि कबिरा फिरे उदास, तीर्थ बड़ा कि तीर्थ का दास॥

शब्दार्थ—झगरा= झगड़ा, विवाद। राजाराम= श्रेष्ठ चेतन। निरुवारे= निरवारना, तय करना, न्याय करना, फैसला करना। निर्बान= निर्वाण, सुख, शांति, मुक्ति। आया= पैदा हुआ, कल्पित हुआ। उपजाया= पैदा किया, रचना की।

भावार्थ—हे श्रेष्ठ चेतन ! एक बहुत बड़ा विवाद है, जो इसका फैसला कर देता है, वह सारे बंधनों से मुक्त होकर कृतार्थ हो जाता है ॥ 1॥ ब्रह्म बड़ा है कि जिसकी कल्पना से ब्रह्म का रूप खड़ा हुआ वह मनुष्य बड़ा है? वेद बड़े हैं कि वेदों के रचयिता बड़े हैं? ॥ 2॥ यह मन बड़ा है कि मन को मानने वाला जीव बड़ा है? ईश्वर बड़ा है कि ईश्वर की अवधारणा करने वाला मनुष्य बड़ा है? ॥ 3॥ संसार के लोग मोक्ष के लिए तीर्थ में मारे-मारे घूमते हैं, परन्तु तीर्थ बड़े हैं कि तीर्थों की स्थापना कर उनका सेवन करने वाले भक्त लोग बड़े हैं? इन विषयों का समाधान करो और कृतार्थ हो जाओ॥ 4॥

व्याख्या—कबीर साहेब धर्म और अध्यात्म क्षेत्र के वैज्ञानिक पुरुष हैं। धर्म और अध्यात्म के नाम पर चलती हुई प्रकृति-विरुद्ध बातों के वे विरोधी हैं। तर्क, युक्ति और विवेकसंगत बातें, जो मानवमात्र के लिए कल्याणकर हैं, उनकी जिसे पिपासा हो वह कबीर साहेब की वाणियों को पढ़े। उसे उनमें सही दिशा मिलेगी। अतएव विचारप्रधान व्यक्ति तथा विवेकी के लिए कबीर साहेब की वाणियां बहुत बड़ा सहारा है।

यहां सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे राजाराम ! हे चेतन सरकार ! हे ज्ञान-सम्राट मानव ! एक बहुत बड़ा विवाद खड़ा है कि ब्रह्म, ईश्वर, वेद तथा तीर्थ श्रेष्ठ हैं कि इनकी जहां से उपज हुई वह श्रेष्ठ है? संसार के अधिकतम लोग तो ऐसे ही हैं जो यही मानते हैं कि ब्रह्म, ईश्वर, वेद तथा तीर्थ श्रेष्ठ हैं। परन्तु कुछ विवेकी होते हैं, उन्हें इस मान्यता पर संतोष नहीं होता। वे कहते हैं कि इन सबका अवधारण जहां से होता है वह श्रेष्ठ है। कबीर देव कहते हैं कि जो इस विवाद को सुलझाकर विवेकसम्मत पथ पकड़ता है वही कल्याण का अधिकारी है। "झगड़ा एक बढ़ो राजाराम" यहां राजाराम मनुष्य की आत्मा के लिए सम्बोधन समझना चाहिए। क्योंकि राजाराम यही है। जो व्यक्ति अपने मन के विवाद एवं संदेह को मिटा देगा वह निर्वाण का अधिकारी हो जायेगा। निर्वाण का अर्थ है बुझा हुआ। यहां अर्थ है वासनाओं का बुझ जाना। सीधा अर्थ हुआ जीव का कृतार्थ एवं मुक्त हो जाना।

"ब्रह्म बड़ा कि जहाँ से आया।" ब्रह्म का अर्थ श्रेष्ठ है। वह मनुष्य की आत्मा ही है। परन्तु लोगों ने ब्रह्म की कल्पना भिन्न ढंग से की है। उनकी कल्पना है कि सत्ता केवल एक ही तत्त्व की है, उसे जड़ कहो या चेतन। वे मानते हैं कि एक ब्रह्म के अलावा न दूसरा चेतन है न जड़ तत्त्व। यह जगत तो है ही नहीं। यह तो भ्रम से ही भासता है। अद्वैत ब्रह्मवाद पर सुन्दरदास जी की कविता में बड़ा रोचक प्रश्नोत्तर है। इसे ध्यान देकर पढ़ें—

शिष्य पूछता है—गुरुदेव !

गुरु कहते हैं—शिष्य ! क्या पूछना है?

शिष्य—मुझे एक शंका है।

गुरु—अभी क्यों नहीं पूछ लेता है।

शिष्य—आप कहते हैं कि एक ही ब्रह्म है, ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं?

गुरु—मैं अब भी एक ही ब्रह्म कहता हूं।

शिष्य—यदि एक ही है तो अनेक क्यों भासते हैं?

गुरु—यह अनेक का सबको भ्रम है।

शिष्य—जब ब्रह्म के अलावा कोई है ही नहीं, तो यह भ्रम किसको है?

गुरु—भ्रम को ही भ्रम हो गया है।

शिष्य—भ्रम ही को भ्रम कैसे हो गया?

गुरु—इसे जानने की तूने कभी चेष्टा नहीं की।

शिष्य—हे स्वामी ! मैं इसे कैसे जानूं कि भ्रम को ही भ्रम हुआ है?

गुरु—निश्चय कर लो कि भ्रम को ही भ्रम हुआ है।

शिष्य—हे प्रभु ! मैंने इसे निश्चय कर लिया।

गुरु—बस, तब एक ब्रह्म सिद्ध हो गया।[1]

यह है अद्वैत ब्रह्मवाद को जबर्दस्ती सिद्ध करने का प्रयास। भ्रम को ही भ्रम हो गया, यह कोई विवेक की बात हुई? परन्तु इस जबर्दस्ती को छोड़कर अद्वैतवाद सिद्ध करने का कोई साधन भी नहीं है। शिष्यों को श्रद्धा के बल पर मनवाने का प्रयास किया जाता है।

यदि ब्रह्म में ही भ्रम होना कहें तो अपने आप को देखकर अपने आप ही भ्रमित होना अयुक्त है। ब्रह्म के अलावा कोई दूसरा था नहीं जिसे देखकर उसे भ्रम हो। यद्यपि इस असंगति को बैठाने के लिए अद्वैतवादी वाणी का एक बृहत् रूप खड़ा करते हैं, तथापि अद्वैतवाद में सब बातें द्वैत की होती हैं जो उनके सिद्धांत से ही अज्ञानजन्य हैं। अद्वैत प्रतिपादन करना ही अज्ञान है, क्योंकि प्रतिपादक, प्रतिपादन तथा प्रतिपाद्य—त्रिपुटी हो जाती है। अद्वैत रह नहीं जाता। कबीर साहेब कहते हैं कि यह ब्रह्म की कल्पना बड़ी नहीं है, किन्तु कल्पना करने वाला जीव बड़ा है। "ब्रह्म बड़ा कि जहाँ से आया" ब्रह्म बड़ा है कि जहां से ब्रह्म की कल्पना खड़ी हुई? वस्तुतः ब्रह्म की कल्पना खड़ी हुई जीव से, इसलिए जीव श्रेष्ठ है, ब्रह्म नहीं। यह मनुष्य की आत्मा ही सर्वोपरि है।

"बेद बड़ा कि जिन्ह उपजाया" वेद बड़े हैं कि वेदों की रचना जिसने की वे मनुष्य बड़े हैं? यह सहज ही समझा जा सकता है कि मनुष्य बड़े हैं। यदि मनुष्य न होते तो वेदों की रचना कौन करता? वेद ही क्या, बाइबिल, कुरान तथा संसार के समस्त धर्मशास्त्र एवं ज्ञान-विज्ञान मनुष्य की देन हैं। धर्मावलंबी लोग धर्मशास्त्रों की इतनी दोहाई देने लगते हैं कि उनके ख्याल से मनुष्य से श्रेष्ठ धर्मशास्त्र ही हो जाते हैं। अधिकतम धार्मिकों को यह सनक सवार है कि हमारे धर्मशास्त्र आकाश से आये हैं। उन्हें कोई अतिमानवीय शक्ति ने भेजा है। वे मूर्तिपूजा की जगह पर धर्मशास्त्रों को ही बैठा देते हैं। यह सब दुर्भाग्यपूर्ण है। वेद हो या कुरान, बाइबिल हो या अन्य धर्मशास्त्र सब मनुष्यों की रचनाएं हैं। मनुष्य से बड़ी कोई चेतनाशक्ति नहीं है जो ज्ञान-विज्ञान दे सके। मनुष्य को किसी वस्तु से तुच्छ कहना अनर्थ है। मनुष्य की आत्मा ही वेदों का वेद है।

"ई मन बड़ा कि जेहि मन माना" यह मन बड़ा है कि इस मन को मानने वाला? उत्तर है कि मन बड़ा नहीं है, किन्तु मन को मानने वाला बड़ा है। हम अपने मन में नाना मान्यताएं बना लेते हैं और उन्हें ही श्रेष्ठ मान लेते हैं, परन्तु श्रेष्ठ मन तथा मन की मान्यताएं नहीं हैं किन्तु जो मन-मान्यताओं को खड़ा करता है वह चेतन मनुष्य ही श्रेष्ठ है। यहां मनुष्य से अभिप्राय है मनुष्य शरीर में रहने वाला जीव, चेतन एवं आत्मा। केन उपनिषद् के ऋषि ने भी कहा है—"जिसका मन से मनन नहीं होता, किन्तु जिससे मन मनन करता है उसे श्रेष्ठ समझ, न कि उसे, जिसे मन से मानकर उपासना करता है।"[2] साहेब कहते हैं कि मन-मान्यता तुम्हारा खेल है, तुम उससे श्रेष्ठ हो। अर्थात मन और मान्यताओं का जनक जीव है। वह उनसे श्रेष्ठ है।

"राम बड़ा कि रामहि जाना" ईश्वर बड़ा है कि ईश्वर की कल्पना करने वाला? यदि राम, ईश्वर, परमात्मा व्यक्ति की आत्मा से अलग है, तो वह क्या है? यदि वह चेतन है तो सजाति है और उससे उसका कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। वस्तुतः मनुष्य अपने स्वरूप के अज्ञान

---

1. शिष्य पूछे गुरुदेव, गुरु कहे पूछे शिष्य,
मेरे एक शंका अहै, क्यों न पूछे अबहीं।
तुम कहो एक ब्रह्म, अजहूं मैं कहूं एक,
एक तो अनेक कैसे, यह भ्रम सबहीं॥
यह भ्रम काकूं भयो, भ्रम ही को भ्रम भयो,
भ्रम ही को भ्रम कैसे, तू न जाने कबहीं।
कैसे करि जानूं नाथ, गुरु कहैं निश्चय धरु,
निश्चय करि जान्यों प्रभु, एक ब्रह्म तबहीं॥

2. यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ (केन उपनिषद्, 1/5)

से अपने से अलग राम-रहीम की कल्पना करता है। साहेब कहते हैं कि यदि राम तुम्हारी आत्मा से अलग है तो वह श्रेष्ठ नहीं हो सकता, किन्तु उसके मानने, जानने तथा कल्पना करने वाले तुम्हीं श्रेष्ठ हो। कबीर साहेब ने मनुष्य की आत्मा को ही राम कहा है "हृदया बसै तेहि राम न जाना।"[1] तथा "राम नाम निजु जानि के, छाड़ि देहु बस्तु खोटि।"[2] अर्थात राम ऐसा नाम अपना ही समझकर खोटी बाह्य कल्पनाएं छोड़ दो। इसलिए सद्गुरु कहते हैं कि ईश्वर की कल्पना करने वाला ईश्वर से श्रेष्ठ है। यदि मनुष्य की आत्मा न होती तो ईश्वर की कल्पना न होती। इसलिए मनुष्य की आत्मा ही ईश्वर का ईश्वर तथा परमात्मा का परमात्मा है।

"भ्रमि भ्रमि कबिरा फिरे उदास, तीर्थ बड़ा कि तीर्थ का दास।" संसार के मनुष्य तीर्थों में भटकते हैं। वे दुखी होकर वहां परमात्मा तथा मोक्ष खोजते हैं। तीर्थों की बड़ी महिमा बढ़ायी गयी। यहां तक लिखा गया कि अमुक तीर्थ में जाने से, अमुक नदी में नहाने से तथा अमुक देवता के दर्शन करने से सारे पाप कट जायेंगे, मोक्ष तथा परमात्मा मिलेंगे। साहेब कहते हैं कि यह सब तुम्हारे मन का धोखा है। यदि तुम न होते तो तीर्थ कौन बनाता! ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाये तो ईसा के तीन-चार सौ वर्ष के बाद से अर्थात गुप्त काल से तीर्थों, देवमन्दिरों आदि की स्थापना का जोर बढ़ा है। वैदिक तथा उपनिषद् काल में कहीं भी तीर्थों का पता नहीं चलता। साहेब कहते हैं कि तीर्थ श्रेष्ठ नहीं हैं किन्तु तीर्थ की स्थापना करने वाले मनुष्य श्रेष्ठ हैं।

इस पूरे शब्द में सद्गुरु ने यही दर्शाया है कि जो ब्रह्म तथा ईश्वर की कल्पना करता है, वेदादि समस्त धर्मशास्त्रों की रचना करता है, जो सारे ज्ञान-विज्ञान का अन्वेषण करता है, जो मन-मान्यताओं का जनक है तथा सारे तीर्थों की स्थापना करता है, वह मनुष्य ही सर्वोपरि सत्ता है। ज्ञान-विज्ञान का परम निधान मनुष्य है। अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी गरिमा एवं आत्मगौरव को समझने का प्रयास करे।

1. रमैनी 41।
2. रमैनी 36।

दुनिया में वही सन्त महान

रचयिता—जितेन्द्र दास

मानुष तन अनमोल बन्दे
करले निज कल्याण ॥टेक॥

किसका धरम है सनातन
उसकी क्या है पहचान।
दिल ही में है खुदा गॉड
सब घट में एक समान ॥ 1 ॥

नर नारी में भेद नहीं
सबमें है ज्ञान प्रकाश।
आगे कदम बढ़ाकर देखें
सब में ही है भगवान ॥ 2 ॥

कौन है ऊंचा कौन है नीचा
तोड़ चलो मान्यता की दीवार।
प्रेम से हिल-मिल जायें
यही है मानव की पहचान ॥ 3 ॥

आये हैं किसलिये यहां
वही कर लो जल्दी निष्काम।
बने रहो सबके हितैषी
तजकर सारा अभिमान ॥ 4 ॥

दुख मत दो किसी को प्यारे
पाये हैं जीने का अधिकार।
जितेन्द्र निजस्वरूप में है रत जो
दुनिया में वही सन्त महान ॥ 5 ॥

जिस आदमी का अपने जिह्वा और मन पर नियंत्रण-संयम नहीं है अर्थात जो स्वाद के वशीभूत ज्यादा और गलत खाता है; कब, क्या, किससे, कितना और कैसे बोलना चाहिए इसका ध्यान नहीं रखता तथा हर समय नकारात्मक बातें सोचता रहता है, वह अपना दुश्मन स्वयं ही बना हुआ है और खुद को दुख दे रहा है। यदि सुख-शांतिपूर्वक जीना चाहते हैं तो अपने जिह्वा और मन नियंत्रण रखें।

मन की भूख कैसे मिटेगी?

हम मनुष्य हैं तो हमारी आवश्यकता क्या है? हमारी मांग क्या है? हम चाहते क्या हैं? हर मनुष्य को इस बात पर सोचना चाहिए और सोचकर उस दिशा में आगे बढ़ने का प्रयत्न करना चाहिए।

एक शरीर की मांग होती है और एक मन की मांग होती है। शरीर की मांग एवं शरीर की आवश्यकता बहुत थोड़ी है। भूख लगने पर भोजन चाहिए, प्यास लगने पर पानी, रोग लगने पर दवा और ठण्डी-गर्मी निवारण के लिए कपड़े और कुछ मकान-छाया चाहिए, बस इतनी ही शरीर की आवश्यकता है। इसमें जब क्वालिटी की बात आती है तो गड़बड़ियां शुरू हो जाती हैं। क्वालिटी पर ध्यान न दें, आवश्यकता पर ध्यान दें।

भूख लगने पर भोजन चाहिए। बिना भोजन के भूख दूर नहीं हो सकती चाहे और कुछ भी उपाय कर लें। कितने ज्ञान की चर्चा करें, गुरुवाणी का पाठ करें, नाम जप करें, मंत्र जप करें, हवन-तर्पण करें, जब तक भोजन नहीं करेंगे तब तक भूख दूर नहीं हो सकती। अब उस भोजन में यह न देखें कि उसकी क्वालिटी कैसी है, चावल कैसा है, सब्जी कैसी है। जो शरीर की प्रकृति के अनुकूल हो खा लेना चाहिए। भूख लगने पर हर चीज में स्वाद होता है।

जो लोग भोजन करते समय शिकायत करते हैं कि आज भोजन स्वादिष्ट नहीं बना है। उसमें कारण यह है कि आज भूख कम लगी है। तेज भूख लगी हो तो सूखी रोटी में अपने आप स्वाद लगेगा। भूख न लगी हो तो मेवा-मिष्टान्न में भी स्वाद नहीं होगा, स्वाद जान नहीं पड़ेगा।

भोजन क्या है? भूख को दूर करने की दवा है। दवा समझकर यदि आदमी भोजन ग्रहण करे तो बहुत मीन-मेख नहीं करेगा। ज्यादा नहीं खायेगा। मीन-मेख तो आदमी इसलिए करता है कि उसका ध्यान स्वाद पर है, आवश्यकता पर नहीं। तमाम छौंक-बघार, तलना-भूनना क्यों? स्वाद के लिए। अधिक मिर्च-मसाले का उपयोग किसके लिए? सिर्फ स्वाद के लिए। लोग जितना स्वाद के चक्कर में पड़ते हैं उतना ज्यादा खाते हैं और ज्यादा खाकर रोग बुलाते हैं। कम खाने वाला आदमी कम बीमार पड़ता है और ज्यादा खाने वाला आदमी ज्यादा बीमार पड़ता है, यह प्रकृति का नियम है। प्रकृति किसी को क्षमा नहीं करती है। उसका नियम सबके लिए बराबर होता है। इसलिए भोजन करने बैठे तो सिर्फ यह देखे कि मेरे शरीर की प्रकृति के अनुकूल क्या है? और जितने से भूख दूर हो जाये उतना खा ले, बस।

शरीर की मांग है भूख लगने पर भोजन, प्यास लगने पर पानी, रोग लगने पर दवा और ठण्डी-गर्मी निवारण के लिए कपड़े और छाया। बस इतने से शरीर की मांग एवं आवश्यकता पूरी हो गयी। लेकिन इतने से मन तृप्त नहीं होता। इनसे मन की जो भूख है वह दूर नहीं होती। मन की भूख किसके लिए है? मन क्या चाहता है? मन चाहता है परम तृप्ति, परमानन्द, परमशांति, ऐसा सुख जिस सुख के पीछे दुख न हो, जिस सुख के पीछे तृष्णा न हो। बहुत कुछ मिल गया, बहुत ऐश्वर्यों को बटोर लिया गया, बड़े पद पर आसीन हो गये, बहुत प्रतिष्ठा हो गयी, खूब विद्या पढ़-लिख लिये, बहुत नाम फैल गया, किन्तु मन जल रहा है, अशांत है, तो बाहर के यह सब वैभव क्या करेंगे।

आप लोगों ने देखा होगा इक्के का घोड़ा। इक्के वाला घोड़े को कितना सजाया रहता है। बाहर से फूल-माला और पता नहीं क्या-क्या खूब पहनाया रहता है। बाहर से खूब सजा है घोड़ा किन्तु बेचारे का पेट और पीठ चिपका हुआ है। और इक्का मालिक का डण्डा खा रहा है, भार ढो रहा है। घोड़े को बाहर से सजा दिया गया और भोजन नहीं दिया जा रहा है तो क्या फायदा हुआ। यह बाहर का जितना चाकचिक्य है, चमक-दमक है, यह सब घोड़े के श्रृंगार के समान हैं। इनसे तृप्ति कभी मिल नहीं सकती। बाहर का आकर्षण तो बहुत होता है। सदैव मन बाहर दौड़ता रहता है। लेकिन बाहर की वस्तुओं को पाकर आजतक तृप्त कौन हुआ है? लगता तो है अमुक-अमुक वस्तु में सुख है, लेकिन जिन लोगों के पास वे वस्तुएं हैं उन लोगों से जाकर पूछिये कि भाई साहब, अमुक चीज मेरे पास नहीं है और मेरे मन में उसके लिए बड़ी लालसा है किन्तु यह चीज तो आपके पास है इससे

तो आपको बड़ा आनंद मिलता होगा, आपको तो बड़ा सुख मिल रहा होगा? वह कहेगा कि भैया, इसमें क्या सुख मिलता है। अमुक चीज मेरे पास नहीं है इसलिए मैं तो बहुत दुखी हूं। उसको उसमें आनन्द नहीं आयेगा।

जो चीज अपने पास नहीं होती है लोग उसमें आनन्द की कल्पना करते हैं और जो चीज अपने पास होती है उसकी कीमत समझ नहीं पाते। दुख और अशांति का कारण यही है। जिसके लिए मन में आकर्षण है जब वह मिल जाता है तब आकर्षण खत्म हो जाता है। किसी कवि ने कहा है—

दुनिया जादू का खिलौना है,
मिल जाये तो मिट्टी है, न मिले तो सोना है।

जब तक नहीं मिला तब तक सोने के समान चमकदार, बड़ा आकर्षक, बड़ा कीमती और मिल गया तब मिट्टी के समान निरर्थक, अनाकर्षक।

अपने बीते हुए जीवन पर दृष्टिपात करें और स्वयं विचारें। बचपन में जिन-जिन वस्तुओं के लिए मन दौड़ता था जवानी आने पर क्या उन वस्तुओं में आनंद मिला? जवानी में जिनके लिए मन बड़ा लालायित एवं आकर्षित था, क्या उनमें सच्चे सुख का अनुभव हुआ? और आज क्या वही आकर्षण है। तत्काल आनंद लगता है फिर सब फीका हो जाता है, किन्तु इस बाहर के आकर्षण एवं चाकचिक्य में हम अपनी वास्तविकता को भूल जाते हैं। ईशावास्योपनिषद् में बड़ा सुन्दर मंत्र कहा गया है—

हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्य धर्माय दृष्टये॥

अर्थात सोने के समान चमकदार बर्तन से सत्य का मुख ढका हुआ है, सत्य छिपा हुआ है। यह सोने के समान चमकदार बर्तन है बाहर का आकर्षण, राग-रंग, सांसारिकता का मोह, हवस। जितना मन बाहर के राग-रंग में डूबता जाता है, बाहर आसक्त होता जाता है उतना ही सत्य से, अपने आप से, परमात्मा से, मोक्ष से दूर होते चले जाते हैं।

कितना भी ज्ञान हो जाये, कितनी भी जानकारी हो जाये लेकिन जब तक मन का मोह नहीं मिटेगा, मन की आसक्ति दूर नहीं होगी, भोगों की जो ललक है यह समाप्त नहीं होगी, तब तक कोई ज्ञान काम नहीं आयेगा। ज्ञान क्या करेगा! 'क्या करे नमाज जबान बाय बिगड़ी।' जबान बिगड़ी हुई है तो नमाज क्या करेगी। मोह मन को जर्बदस्त घेरा हुआ है तो ऊपर-ऊपर का ज्ञान क्या करेगा! कौन आदमी नहीं जानता है कि यह गलत है और यह सही है। अनाड़ी से अनाड़ी आदमी जो कभी स्कूल गया ही नहीं है उससे पूछ लो कि क्या गलत है और क्या सही है तो वह भी बता देगा।

एक शराबी आदमी से पूछा जाता है कि शराब पीना गलत है या सही है। गांजा, भांग, बीड़ी और सिगरेट पीने-खाने वाले से पूछो कि गांजा, भांग आदि खाना-पीना सही है या गलत है? तो वह यही कहेगा कि गलत है, फिर उससे पूछा जाता है गलत है तो क्यों पीते-खाते हो? तब कहते हैं आदत बन गयी है।

कौन नहीं जानता है कि यह सही और यह गलत है। किन्तु केवल जानकारी काम नहीं करेगी, आचरण काम करेगा। बहुत जान लिये और आचरण बिल्कुल नहीं है तो सारा जानना और कहना-सुनना केवल भूसी पछोड़ना ही है। महाभारत में एक श्लोक आता है जो बड़ी कठोर भाषा में है। मानो कबीर साहेब ही कह रहे हों। युधिष्ठिर से महाभारतकार ने कहलवाया है—

पठकाः पाठकाश्चैव चान्ये शास्त्रविचिन्तकाः।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खाः यः क्रियावान् स पण्डितः॥

पढ़ने वाले, पढ़ाने वाले और अनेक शास्त्रों का चिंतन-मनन करने वाले सब व्यसनी और मूर्ख हैं। जो क्रियावान-आचरणसम्पन्न है वह पण्डित है, ज्ञानी है।

यहां पण्डित का अर्थ जाति विशेष से नहीं है। एक पण्डित पोथी-पत्राधारी को कहते हैं, चाहे वह गलत श्लोक ही क्यों न बोलता हो। जो सत्यनारायण व्रत कथा कहता है, दान-दक्षिणा लेता है उसे भी लोग पण्डित कह देते हैं। एक पण्डित किसी विषय के जानकार को, विद्वान को कहते हैं। लेकिन असली पण्डित वह है जो आचरणसम्पन्न है, चाहे वह पढ़ा-लिखा हो या न हो।

कोरी पढ़ाई-लिखाई काम नहीं करेगी, काम करेगा आचरण। गलत को गलत जानकर उसका त्याग और सही को सही जानकर उसका आचरण। किसी ने कितना बढ़िया कहा है—

पढ़े लिखे कुछ होत नहीं, बिन जाने निज भेद।
पढ़कर भी राक्षस रहा, रावण चारों वेद॥

रावण चारों वेदों का महा विद्वान था लेकिन फिर भी रावण को पण्डित नहीं कहा गया, राक्षस ही कहा गया। रावण उत्तम ब्राह्मण विश्रवा का पुत्र था। उनकी माता कैकसी राक्षस कुल में उत्पन्न थीं। पिता ब्राह्मण था और माता राक्षस परिवार की थी। इसलिए रावण को ब्रह्मराक्षस भी कहा जाता है।

विश्रवा जैसे ब्राह्मण का पुत्र रावण चारों वेदों का प्रकाण्ड पण्डित था। वाल्मिकीय रामायण में रावण को 'वेद विद्याव्रत स्नातः' कहा गया है अर्थात वेद-विद्या में निपुण, वेद विद्या में पारंगत-उत्तीर्ण कहा गया है। लेकिन रावण को पण्डित-ज्ञानी नहीं कहा गया, किन्तु राक्षस कहा गया, क्योंकि आचरण में गड़बड़ी आयी।

सार यह है कि बहुत पढ़ाई-लिखाई हो गयी, बहुत जानकारी हो गयी, अच्छे ढंग से कहने की कला भी आ गयी, हजारों लोगों को अपनी वाक् कला से मुग्ध कर लेते हैं लेकिन यदि मन का मोह नहीं टूटा, विषयों की आसक्ति एवं वासनाएं समाप्त नहीं हुईं तो पढ़ना-लिखना काम नहीं आयेगा, अपितु भटकने का कारण ही बन जायेगा। आसक्ति समाप्त हो गयी, वासनाएं मिट गयीं, मोह टूट गया तो अब जीवन में क्या करना शेष रहा? जिसे चाहते हैं परमानंद, परमशांति, परमसुख सहज उपलब्ध हो जायेगा। परमानंद, परम सुख की प्राप्ति के लिए बहुत कुछ बटोरने की जरूरत नहीं है। बटोरने से सुख नहीं मिलता, किन्तु सुख मिलता है त्याग से।

त्याग का अर्थ घर-द्वार छोड़ना नहीं है किन्तु त्याग का अर्थ है आसक्ति, कामना एवं मोह का त्याग। सद्गुरु कबीर साहेब कहते हैं—'घूँघट का पट खोल रे तोको पीव मिलेंगे।' घूंघट का पट हटा दो तुम्हें परमात्मा मिल जायेगा। लक्षणा में साहेब कहते हैं। यह घूंघट क्या है? पहले महिलाएं घूंघट लगाती थीं। यदि पति से मिलना हो तो घूंघट हटाना ही पड़ेगा। यहां मनोवृत्ति दुल्हन है। उसने अविद्या का, मोह-माया, वासना का परदा ओढ़ रखा है और चाहती है कि परमात्मा का दर्शन कर लूं, आत्मसाक्षात्कार कर लूं। कबीर साहेब कहते हैं कि यह नहीं हो सकता है। यदि आत्मसाक्षात्कार-स्वरूप-साक्षात्कार करना चाहते हो, राम का दर्शन करना चाहते हो तो (घूंघट का पट) अविद्या का, मोह-माया का परदा हटा दो। जब तक यह नहीं होगा तब तक राम का, आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता और तब तक मन की जो भूख है वह समाप्त नहीं होगी।

यह बाहर की सारी चमक-दमक सोने के बर्तन के समान आकर्षक है और इसी में ही सत्य ढका हुआ है। ऐ पोषण चाहने वाले आत्मा! उसे तू हटा दे। क्यों हटा दे? सत्य-धर्म के दर्शन के लिए।

जब तक मोह के परदे को दूर नहीं करेंगे तब तक सत्य-धर्म का दर्शन हो नहीं सकता और सत्य धर्म का दर्शन नहीं हुआ, सत्य का साक्षात्कार नहीं हुआ तो आत्मशांति कैसे मिलेगी? मन को तृप्ति कैसे मिलेगी? जैसे बाहर की वस्तुओं से लोग पेट भर लेते हैं, पेट तृप्त हो जाता है ऐसे ही बाहर की वस्तुओं को बटोर-बटोर कर मन को भी तृप्त करना चाहते हैं। यदि बाहर की वस्तुओं को बटोरने से, बहुत संग्रह कर लेने से मन तृप्त होता तो संसार के सारे धनी लोग तृप्त हो गये होते। क्या यह कहा जा सकता है कि संसार में जितने धनी हैं वे सब परमानंद को प्राप्त हैं, परमसुखी हैं और क्या जो गरीब लोग हैं जिनके पास धन ही नहीं है, खाने-पीने को नहीं है, बड़े मुश्किल से जिनका जीवन चलता है, वे दुखी ही रहेंगे।

यह निश्चित है कि पेट भर खाने को न मिले, ठण्डी-गर्मी निवारण के लिए पर्याप्त और उचित कपड़े न मिले, बरसात और सर्दी आदि से बचने के लिए छाया न मिले तो दुख की बात है। गोस्वामी जी ने भी कहा है—'नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं।' दरिद्रता के समान दुख संसार में कुछ नहीं है। दरिद्रता क्या है? सुबह से शाम तक मेहनत करने के बाद भी चौबीस घण्टे में एक बार भी भरपेट भोजन न मिले तो यह दरिद्रता है और ऐसी दरिद्रता निश्चित ही दुखद होगी ही, लेकिन ऐसा दरिद्र शायद ही कोई मिले।

आदमी दुखी क्यों है? फिजूलखर्जी, दुर्व्यसन और कामचोरी के कारण। आदमी पूरी मेहनत नहीं करना चाहता। वह मेहनत से जी चुराता है। मेहनत कुछ किया भी तो फिजूलखर्च, दुर्व्यसन में तमाम खर्च कर देता है। यहां तक एक रिक्शा चालक एवं मजदूरी करने वाला व्यक्ति भी जब शाम को छुट्टी पाता है तो शराब की दुकान में जाकर 50-100 रुपये की शराब पी लेता है। दस-बीस रुपये के तम्बाकू-बीड़ी खा-पी लेता है। और शिकायत करता है कि महाराज क्या करें, खाने को नहीं मिलता। क्या जरूरत है शराब, तम्बाकू, बीड़ी आदि की! पैसे की बरबादी, स्वास्थ्य की बरबादी, समय की बरबादी, परिवार की बरबादी और अंत में जीवन की बरबादी। दुर्व्यसन, फिजूलखर्ची एवं कामचोरी के कारण आदमी दरिद्र बना हुआ है। यदि पूरी मेहनत करे, फिजूलखर्च और दुर्व्यसन न हो तो आदमी को जीवनपर्यन्त खाने-पीने को मिलता रहेगा। इसमें किसी प्रकार का कोई संदेह नहीं है।

गोस्वामी जी कहते हैं—'नहिं दरिद्र सम दुख जग माही।' दरिद्रता के समान संसार में कोई दुख नहीं है और दरिद्रता निश्चित ही दुर्भाग्यपूर्ण है।

अधिकतम लोग मन से दरिद्र बने हुए हैं। बाहर से दरिद्र भले न हो, मन से तो हर आदमी दरिद्र बना हुआ है। भीतर से संतोष किसी को नहीं है और जो मन से असंतुष्ट बना हुआ है वही असली दरिद्र है। भागवतकार कहते हैं—'दरिद्रो यस्त्वसंतुष्ट' दरिद्र कौन? जो असंतुष्ट है। असंतोष से मन कभी तृप्त नहीं होता है। लाख-करोड़ ही नहीं अरब-खरब भी मिल जाये और मन में असंतुष्टि बनी हुई है तो उस अरब-खरब का सुख भी आदमी नहीं ले पायेगा। उसे अभाव की अनुभूति होती रहेगी और दुख पर दुख भोगता रहेगा।

पैसे से दरिद्रता दूर नहीं होती, पैसे से असंतोष दूर नहीं होता। असंतोष तो दूर होता है, सही समझ से, सदाचार से, सद्चरित्र से, संतोष से। गोस्वामी जी जरूर यह कहते हैं कि 'नहीं दरिद्र सम दुख जग माहीं' लेकिन आगे यह नहीं कहते कि धन मिलन सम सुख कछु नाहीं। वे कहते हैं—'संत मिलन सम सुख कुछ नाहीं' संत मिलने के समान दुनिया में और सुख नहीं है।

संत हमें हमारी वास्तविकता का परिचय करते हैं। हम अपनी वास्तविकता को भूल गये हैं। शरीर को अपना मान लिये हैं या जाति-पांति में चिपक गये हैं। जाति-पांति, वर्ण-आश्रम, मत-मजहब, परंपरा, नाम-रूप इनमें अपने को जोड़कर इन्हें अपना मान लिये हैं। सारी दौड़ केवल शरीर तक ही है, किन्तु शरीर हमारी वास्तविकता नहीं है। हम शरीर नहीं हैं। शरीर तो बदलने वाला है। शरीर के भीतर रहने वाला एक ऐसा तत्त्व है जो एकरस है, जो शरीर के नहीं रहने पर भी था और शरीर के न रहने पर भी रहेगा। उसे आप जीव-चेतन कहें, रूह, सोल, आत्मा, राम, रहीम, खुदा, गॉड आदि कुछ भी कहें यह आपकी मर्जी। शब्दों को लेकर लड़ने की जरूरत नहीं है। जिसको जिससे संतोष हो वह वह शब्द कह ले, क्योंकि शब्दों के अंतर होने से तथ्य में और वस्तु में अंतर नहीं होता। पानी, वाटर, नीर, तोय, आब कहें तो वस्तु में अंतर नहीं हो जायेगा। वस्तु तो वही की वही रहेगी।

हमारे जो पूर्वज थे वे कभी पानी नहीं पीते थे, जल पीते थे या नीर पीते थे। संस्कृत साहित्य में पानी शब्द ही नहीं है। लेकिन जल, नीर और पानी में अंतर क्या है। ये तो शब्द हैं।

शब्द तो बनते-बिगड़ते रहते हैं, साथ ही बदलते रहते हैं। जीव, चेतन, आत्मा, रूह, सोल, खुदा, गॉड, परमात्मा, ब्रह्म, जिससे संतोष हो आपको वह कह लें। वही शरीर के भीतर रहने वाला जो एकरस तत्त्व है उसका बोध संत कराते हैं। वही हमारी वास्तविकता है। मैं शरीर नहीं हूं। नाम-रूप मेरा अपना होना नहीं है। जाति-वर्ण, मत-मजहब, संप्रदाय से जो मैंने अपने को जोड़ रखा है ये सब के सब बनावटी और झूठे हैं। मैं इन सबसे सर्वथा भिन्न शुद्ध-बुद्ध अविनाशी चेतन तत्त्व हूं, ऐसा जानकर जब अपने से भिन्न सब कुछ के मोह और वासना का त्याग कर दिया जाता है तब मन की भूख दूर हो जाती है और मन परम तृप्त हो जाता है।

ऐसा करने वाले संत ही होते हैं। इसीलिए गोस्वामी जी कहते हैं कि 'संत मिलन सम सुख कछु नाही' संतों के मिलने के समान सुख कुछ भी नहीं है।

कोई कितना भी क्यों न जान ले, लेकिन मोह न छोड़े, थोड़ी-थोड़ी वस्तुओं के लिए झूठ बोलता रहे, थोड़ी-थोड़ी वस्तुओं के लिए लोगों को धोखा देता रहे, राग-द्वेष में पड़ा रहे, लड़ाई-झगड़ा में, कलह में पड़ा रहे, मन में ईर्ष्या-द्वेष बना कर रखे तो 'अहं शुद्ध चैतन्य ज्ञान स्वरूपम्' का पाठ करने से काम नहीं चलेगा। हां, यह जानना जरूरी है क्योंकि जब तक जानेंगे नहीं तब तक भटकते रहेंगे कि हमारा जो लक्ष्य है, कहीं बाहर है।

जिनके सदाचार, उत्तम रहनी को देखकर मन अपने आप श्रद्धा से झुक जाता है, जिनके तप, वैराग्य, सदाचार की उत्तम रहनी प्रशंसनीय ही नहीं अनुकरणीय है, ऐसे ऐसे बड़े-बड़े तपस्वी संत-महात्मा भी राम को, परमात्मा को, आत्मा को बाहर से पाने के लिए भटक रहे हैं। व्याकुल बने हुए हैं। क्योंकि शास्त्रों में लिखा हुआ है कि ईश्वर-परमात्मा बाहर से मिलेगा। वे मान लेते हैं कि शास्त्रों में लिखी बातें झूठ कैसे होंगी? यह शास्त्रों का मोह आदमी को भटका देता है। केवल विषय-वासना ही नहीं भटकाती है। शास्त्रों का मोह भी खूब भटकाता है। इसलिए शास्त्रों के मोह का भी त्याग करना होगा। कहीं किसी का भी मोह हो सब भटकने के कारण बनेंगे। सद्गुरु कबीर की साखी है—

कुल पशु गुरु पशु वेद पशू, काम पशु संसार।
मानुष ताको जानिये, जाहि विवेक विचार॥

कुल पशु का अर्थ है जाति-पांति और वर्ण का अहंकार कि हम बड़ी जाति के हैं, हमारा कुल ऊंचा है, हमारा वर्ण ऊंचा है, हम जन्म से पवित्र हैं, अपने को ऐसा मानना और दूसरों को यह कहना कि ये जन्म से छोटे एवं नीच हैं। यह कुल पशु हो जाना है। कुल का एवं जाति-पांति का पक्ष लेने वाला कुल पशु है। जबकि सारी जाति-पांति झूठी एवं काल्पनिक हैं। आदमी तो आदमी है। आदमी के साथ आदमीयत का व्यवहार करें। कहीं कुछ लोग बैठे हुए हों और वहां एकदम सर्वथा कोई अपरिचित आदमी आ जाये बाहर से जो वहां के लोगों में से किसी को न पहचानता हो तो क्या वह वहां के लोगों को देखकर यह बता सकेगा कि अमुक आदमी अमुक जाति का है और अमुक आदमी अमुक जाति का है, अमुक आदमी अमुक कुल-परंपरा का है। कुछ नहीं बता सकेगा। लेकिन जैसे वह आयेगा वैसे ही यह जान लेगा कि यहां कुछ आदमी बैठे हुए हैं। मतलब आदमीयत सही है, आदमीयत सत्य है। उस आदमीयत को पहचानें और बाकी जाति-पांति को लेकर मिथ्या अहंकार और हीन भावना अपने मन में बिल्कुल ही न लायें। यह कुल, जाति, वर्ण का अहंकार करना कुल पशु होना है।

गुरु पशु होना है हमारे गुरु ने जितना बता दिया है उतना ही सत्य है क्योंकि हमारे गुरु ईश्वर के अवतार हैं, स्वयं ईश्वर हैं, पहुंचे हुए सिद्ध हैं, हमारे गुरु द्वारा ही मोक्ष और स्वर्ग मिल सकता है। हमारे गुरु द्वारा ही आत्मकल्याण हो सकता है और भगवान के दर्शन हो सकते हैं और हमारे गुरु के अतिरिक्त अन्य जो गुरु हैं वे भूले-भटके हुए लोग हैं, ऐसा मान लेना गुरु का पशु बन जाना है।

अपने गुरु के प्रति सबको श्रद्धा रखना चाहिए लेकिन यह कहना कि हमारे गुरु द्वारा ही स्वर्ग-मोक्ष मिल सकता है, हमारे गुरु ही ईश्वर और ब्रह्म के अवतार हैं, सिद्ध हैं महा झूठी बात है। गुरु के प्रति आदर रखें क्योंकि गुरु पूजनीय हैं, श्रद्धेय हैं, लेकिन गुरु की पूंछ पकड़कर बैठ जाना, अन्य महापुरुषों की कीमत समझना ही नहीं, उनकी बातों को सुनना ही नहीं यह गुरु पशु होना है। ऐसे व्यक्ति को आत्मज्ञान नहीं हो सकता, वास्तविकता का बोध नहीं हो सकता।

अपने गुरु के प्रति श्रद्धा रखें और अन्य महापुरुषों के प्रति विनम्र होकर उन्हें आदर देते हुए उनकी बातों को भी सुनें। सब लोग सही बात बताते हैं। जो गलत हैं उन्हें छोड़ दें। कबीर साहेब ने कहा है—

साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहे, थोथा देय उड़ाय॥

तीसरा है 'वेद पशु'। वेद का अर्थ यहां चार वेद ही नहीं है। अर्थ है धर्मग्रन्थ, धर्मशास्त्र। चाहे उसका नाम कुछ भी ले लो। हमारा धर्मशास्त्र ईश्वरीय वाणी है, स्वयंभू है, अपौरुषेय है। उनमें ही सत्य समाया हुआ है। और हमारे धर्मशास्त्रों में जो कुछ लिखा गया है हम तो वही बात ही मानेंगे, उसके अतिरिक्त बात नहीं मानेंगे, ऐसा हठ कर लेना वेद पशु बन जाना है। और ऐसा आदमी भी सत्य ज्ञान नहीं पा सकता। शास्त्र आदरणीय है। सभी मतों के शास्त्रों को पढ़ना चाहिए। सभी में अच्छाइयां हैं, लेकिन जो कुछ हमारे शास्त्रों में लिखा है उतना ही मानेंगे, यह हठ बेकार है।

बड़ा सा बड़ा परंपरावादी भी शास्त्रों में जो कुछ लिखा गया है सब का सब नहीं मान पाता। बहुत कुछ को वह भी छोड़ देता है और नयी-नयी बातें वह भी स्वीकार कर लेता है। यह समाज तो एक धारा है, समय का प्रवाह चल रहा है और समय के प्रवाह के अनुसार जो समय विरुद्ध हो जाये उसका त्याग कर जो समय के अनुकूल हो उसका ग्रहण हर समय के विवेकियों ने किया है और आज के विवेकी भी कर रहे हैं। सद्गुरु कबीर ने कहा है—

ददा देखहु बिनसनहारा, जस देखहु तस करहु विचारा।

(बीजक, ज्ञान चौंतिसा)

साहेब कहते हैं जैसा देखो वैसा विचार करो। समय के अनुकूल देखना पड़ेगा कि क्या सही है और क्या गलत है। शास्त्रों में जो लिख दिया गया है उतना ही सही नहीं है। पुरानी बात है, हजारों लोग मानते आये हैं, हमारी परम्परा को हजारों साल से मानते हुए आ रहे हैं तो यह झूठी थोड़ी हो जायेगी और आज की नयी बातों पर हम विश्वास कैसे करें, यह सोचना सही नहीं है। नयी बात भी सही हो सकती है और पुरानी बात भी गलत हो सकती है। कालीदास जी ने कहा है—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढ परप्रत्ययनेय बुद्धिः॥

पुरानी होने से कोई बात सही नहीं हो जाती और नयी होने से कोई बात गलत नहीं हो जाती। जो संत हैं, जो विवेकवान हैं वे परीक्षापूर्वक त्याग-ग्रहण करते हैं और जो मूढ़ लोग होते हैं वे आँख मूंदकर स्वीकार कर लेते हैं। संत का अर्थ अमुक प्रकार का कपड़ा पहनने वाला नहीं है। कोई भी आदमी संत हो सकता है। जो सत्य और असत्य की परख करे वह संत है। जिसे विवेक हो वह संत है।

मूढ़, अंधविश्वासी, पूछलग्गू न बनें, विवेक करें। विवेक से जो उचित है उसका त्याग-ग्रहण करें। वेद पशु होना सत्य ज्ञान के मार्ग में बहुत बड़ा रोड़ा है।

चौथा है 'काम पशु' काम-वासना में डूबा हुआ व्यक्ति जो अत्यंत विषय-लंपट भोगी आदमी है वह सत्य ज्ञान, आत्म ज्ञान कैसे प्राप्त कर सकता है। इन चारों बाधाओं को त्याग करके ही आत्मसाक्षात्कार हो सकता है और ऐसा करने वाला ही सही ज्ञानी है।

एक तन की भूख है और एक मन की भूख है। तन की जो भूख है वह सबकी पूरी होती है। आदमी बस मेहनत करे और असंयमी, कामचोर, फिजूलखर्ची, व्यसनी न हो तो तन की भूख, तन की आवश्यकता सबकी पूरी होती रहेगी। उसमें कमी नहीं होगी। लेकिन यह सोचते हैं कि हम बहुत सारी सम्पदा बटोर लेंगे, हमारी बहुत प्रतिष्ठा बढ़ जायेगी, बड़ा नाम फैल जायेगा, विद्या बढ़ जायेगी तब मन से तृप्त हो जायेंगे, यह भ्रम है। मन की भूख बाहर की वस्तुओं से नहीं मिटेगी। मन की भूख मिटेगी सही समझ, आत्मज्ञान और सदाचार से। सरल ढंग से कहें तो ज्ञान और वैराग्य से। ज्ञान का तात्पर्य है आत्मज्ञान, स्वयं का ज्ञान और वैराग्य का तात्पर्य है अनासक्ति।

जितना-जितना शरीर से हटकर आत्मा की ओर चलते जायेंगे और सबके मोह को त्यागकर अनासक्त होते जायेंगे उतना-उतना मन की शांति की दिशा में आगे बढ़ते जायेंगे और जब पूरा आत्मज्ञान हो जायेगा और अपने अलावा जो कुछ है सबकी आसक्ति एवं मोह का पूरी तरह से त्याग हो जायेगा तब मन पूरा तृप्त-संतुष्ट हो जायेगा और यह जीवन कृतार्थ हो जायेगा।

—धर्मेन्द्र दास

सुखी जीवन की चाबी

लेखक—गुरुवेन्द्र दास

(गतांक से आगे)

10. आत्मसंयम—चिंता, डिप्रेशन, तनाव, अवसाद की महत्त्वपूर्ण चाबी है आत्मसंयम। कबीर साहेब ने इसीलिए कहा है "सदा रहे सुख संयम अपने, बसुधा आदि कुमारी।" आत्मसंयमी व्यक्ति किसी भी स्थिति में विचलित नहीं होता। हर स्थिति, परिस्थिति में वह सुखी रहता है। आत्मसंयम का मतलब अपनी इंद्रियों पर पूर्ण संयम अर्थात तन, मन, वचन पर पूर्ण नियंत्रण।

संयमी व्यक्ति इंद्रियों को अपने अनुसार चलाता है। जैसे क्या देखना है क्या नहीं देखना है, क्या खाना है क्या नहीं खाना है, क्या सोचना है क्या नहीं सोचना है, क्या बोलना है क्या नहीं बोलना है किन्तु असंयमी व्यक्ति इंद्रियों के अनुसार चलता है। जैसे लगामरहित घोड़ा आदमी को कहीं भी पटक सकता है वैसे संयमरहित इंद्रियां कहीं भी भटका सकती हैं। प्रकृति की ओर से हर मनुष्य को पांच ज्ञानेंद्रियां मिली हुई हैं, जो बाहर खुली हैं। हर व्यक्ति को अपने तन, मन, वाणी पर सदैव ध्यान रखना चाहिए। थोड़ी-सी भूल भी जिंदगी को धूल में मिलाने के लिए पर्याप्त होती है। किसी ने कितना सुन्दर कहा है—

हजार फूल कम हैं, गले को सजाने को।
एक भूल काफी है, जिंदगी भर रुलाने को॥

सद्गुरु विशाल देव कहते हैं—असंयमी व्यक्ति को दुनिया के माने गये सारे भोग मिल जाये तो भी वह संतुष्ट नहीं हो सकता। क्योंकि जिस इच्छा की उत्पत्ति ही भोगों से हुई है उसकी निवृत्ति उन्हीं भोगों से कैसे हो सकती है।

एक छोटा बच्चा लगभग दो-ढाई साल में बोलना सीख जाता है लेकिन दुख की बात तो यह है कि आदमी बूढ़ा हो जाता है फिर भी कब, क्या, कहां, कैसे, कितना बोलना है जिंदगी बीत जाती है पर सीख नहीं पाता है। इसीलिए घर, परिवार व समस्त भौतिक सुखों के होते हुए भी आदमी दुखी, परेशान एवं चिंतित रहता है।

आदमी छोटी-छोटी बातों को लेकर व्यर्थ की चिंता में डूबा रहता है। जिन बातों की जीवन में कोई अहमीयत नहीं होती उन बातों को सोच-सोच कर आदमी चिंता में अपने रत्न तुल्य जीवन को बरबाद कर देता है। संतों ने चिंता को चिता से भी घातक कहा है। चिता तो केवल मुर्दे को जलाती है किंतु चिंता जिंदा को जलाती है। चिंता का बुखार जिस व्यक्ति को लग जाता है उसका सब कुछ छीन जाता है। किसी ने कहा है—

चिंता ज्वरो मनुष्याणां क्षुधां निद्रां बलं हरेत्।
रूपमुत्साह बुद्धिश्च श्री जीवनं न संशयः॥

अर्थात चिंता का ज्वर जिस मनुष्य को हो जाता है पहले उसकी भूख छीन जाती है, फिर नींद छीन लेती है, तब उसकी शक्ति छीन कर उसे निर्बल कर देती है। यह सब छीन कर भी चिंता शांत नहीं रहती इसके पश्चात रूप तथा चेहरे की प्रसन्नता छीन लेती है। बुद्धि छीन लेती है, धन छीन लेती है और अंततः जीवन को समाप्त कर देती है। एक लेखक ने बड़े मनोरंजक ढंग से चिंता के बारे में लिखा है—

चिंता ऐसी चुहड़ी, काटि कलेजा खाय।
डॉ. बेचारा क्या करे, कहां तक सुई लगाय॥

जीवन में आहार का बड़ा प्रभाव पड़ता है। आहार का मतलब केवल मुख से ग्रहण करना ही आहार नहीं है, कान से सुनना कान का आहार है, आंख से देखना आंख का आहार है, नाक से सूंघना नाक का आहार है। त्वचा का स्पर्श त्वचा का आहार है। इसीप्रकार मन से सोचना मन का आहार है। गलत खाना, गलत देखना, गलत सुनना, गलत सूंघना, गलत स्पर्श जैसे स्वास्थ्य के लिए अहितकर है वैसे गलत सोचना, अनावश्यक

सोचना, समय विरुद्ध सोचना भी स्वास्थ्य के लिए बड़ा हानिकारक है। संयम के विषय में गीता में महाराज श्रीकृष्ण ने कहा है—जो आहार-विहार उचित रखता है, जो कर्मों की चेष्टा उचित रखता है और जो सोना-जागना उचित रखता है उसका योग दुखों का नाशक होता है—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

छांदोग्य उपनिषद् में कहा गया है आहार शुद्ध होने पर अंतःकरण शुद्ध होता है, अंतःकरण शुद्ध होने पर स्मृति अचल हो जाती है और स्मृति स्थिर हो जाने पर सारी ग्रंथियां पूर्णतः कट जाती हैं—

आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः॥

पेट और मन का बड़ा गहरा संबंध है। स्वरूपलीन सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी कहा करते थे जिसका पेट खाली और मन खाली, वह है सबसे बड़ा सौभाग्यशाली। वाणी पर संयम न होने की वजह से ही रामायण और महाभारत जैसे भीषण युद्ध हुए हैं। मुख के द्वारा निकले हुए शब्द के हाथ-पांव नहीं होते किन्तु वे यदि अनियंत्रित हो जाते हैं तो अच्छे-अच्छों के हाथ-पांव तोड़ देते हैं। कबीर साहेब ने कहा है—

शब्द सम्हारे बोलिये, शब्द के हाथ न पांव।
एक शब्द औषधि करै, एक शब्द करै घाव॥

भोजन करते-करते या किसी चीज द्वारा जीभ पर लगी चोट या घाव जल्दी भर जाता है लेकिन जीभ द्वारा लगी चोट या घाव जल्दी क्या कभी-कभी तो किसी-किसी का जीवनभर नहीं भर पाता। वाणी रूपी वृक्ष के रेशे कलेजे में चुभ कर जीवनभर दुखता रहता है, निकालने पर भी नहीं निकल पाते। कबीर साहेब ने कहा है—

करक करेजे गड़ि रही, बचन बृक्ष की फांस।
निकसाये निकसे नहीं, रही सो काहू गांस॥

एक लेखक ने लिखा है कि संयमी आदमी जब बोलता है तो वह सामने वाले आदमी के दिल में उतर जाता है किंतु वही बात जब एक असंयमी आदमी बोलता है तो वह सामने वाले आदमी के दिल से ही उतर जाता है। जिस प्रकार अनियंत्रित व असंयमित वाणी खतरनाक होती है उसी प्रकार असंयमित दृष्टि भी खतरनाक होती है। दृष्टि यदि सही है तो सृष्टि सही और सुन्दर लगती है। गांधी जी के तीन बंदरों के बारे में प्रायः सभी जानते हैं। एक बंदर आंख बंद किये बैठा है जो संकेत करता है कि अपनी आंखों को संयत रखें, नम्र रखें। हमारी आंखें हेड लाइट की तरह हैं, जिसमें पलकें हीपर-डीपर हैं। जैसे रात में दो दिशा से गाड़ी आ रही हो तो एक गाड़ी वाला अपनी गाड़ी की लाइट को डीपर कर लेता है अर्थात डाउन कर लेता है, झुका लेता है। यदि दोनों गाड़ी की लाइट हीपर ही हो तो एक्सीडेंट का खतरा रहता है। इसीप्रकार दो विरोधी घट (स्त्री-पुरुष) कहीं मिलें तो एक को चाहिए कि वे अपनी नजरें झुका लें तो कोई खतरा नहीं होगा। जब दो विरोधी घट की आंखें बराबर मिलती हैं तो आकर्षण से विकार पैदा होता है। इसी विकार के शिकार में पड़कर आगे युवक-युवतियों का जीवन तनाव, चिंता, टेंशन के चंगुल में फंस जाता है। लेकिन ऐसी बात नहीं है कि इसका इलाज नहीं है। कबीर साहेब ने कहा है—"भाई रे नयन रसिक जो जागे। पारब्रह्म अविगति अविनाशी कैसहु कै मन लागे।" अर्थात कैसा भी नयन का रसिक आदमी है यदि वह संयमित हो जाता है तो वह भी आत्मशांति, कल्याण का काम कर सकता है।

गांधी का दूसरा बंदर मुंह पर हाथ रखे बैठा रहता है जो संकेत करता है कि अपनी जबान को, मुख को संयमित रखें। आदमी के जीवन में ज्यादातर तनाव, चिंता, टेंशन, अवसाद असंयमित-अमर्यादित बोल के कारण ही पैदा होते हैं। एक लेखक ने सुंदर लिखा है—

बात से बात बिगड़ जाती है,
बात से बात बन जाती है।
बात में ही है बात की दवा,
मीठी वाणी से जिंदगी सुधर जाती है॥

यदि आदमी बोलने के पहले सोच-विचार कर ले तो बहुत कुछ झगड़ा-लड़ाई, टेंशन से बच सकता है। कबीर साहेब ने कितना सुंदर कहा है—

बोल तो अमोल है, जो कोई बोले जान।
हिये तराजू तौलिके, तब मुख बाहर आना॥

(बीजक, साखी 276)

जब कोई आदमी दुकान में सौदा खरीदने जाता है तो सामान को तराजू में तौलकर ही लेता है। हर व्यक्ति के अंदर हृदय रूपी तराजू है। कुछ भी बोलने के पहले उसमें तौल लेना चाहिए।

गांधी जी का तीसरा बंदर है जो कान पर हाथ रखे बैठा है। वह संकेत करता है कि कोई आपके बारे में कुछ भी उलटा-सीधा बोलता है उस पर ध्यान मत दो, सोचो मत। अक्सर ऐसा होता है कि किसी ने हमारे बारे में थोड़ा कुछ विपरीत कहा हम उसके बारे में बहुत कुछ उलटा-पलटा सोच लेते हैं, उन्हें अपना दुश्मन मान लेते हैं। यहां तक मरने-मारने पर तैयार हो जाते हैं। गांधी जी ने तो केवल तीन बंदरों के बारे में संकेत किया है किंतु संतों ने एक चौथा बंदर भी बताया है जो अपना हाथ सिर पर रखा बैठा है। वह चौथा बंदर मन है। सच पूछो तो उपर्युक्त तीनों बंदरों से यह चौथा बंदर ही श्रेष्ठ है। इसी चौथे बंदर के इशारे से उपर्युक्त तीनों बंदर नाचते हैं। मन के कहने से ही आंखें देखती हैं, नासिका गंध लेती है, कान श्रवण करता है, त्वचा स्पर्श करती है तथा जिह्वा रस ग्रहण करती है। यदि यह मन संयत हो जाये, तो सारी इंद्रियां अपने आप संयत हो जायेंगी। सद्गुरु कबीर साहेब ने कहा है—

एक साधे सब साधिया, सब साधे एक जाय।
जैसा सींचै मूल को, फूलै फलै अघाय॥

जो मनुष्य मन की प्रत्येक गतिविधि पर ध्यान देता है वह कभी दुखी नहीं होता। एक महात्मा बराबर एक नदी के तट पर जाता, कुछ देर वहां चुपचाप बैठता फिर वापस आश्रम आ जाता। उनकी इस प्रक्रिया को एक चौकीदार रोज देखता पर उन्हें कुछ समझ में नहीं आता कि महात्मा जी रोज यहां नदी के तट पर क्या करते हैं। एक दिन उन्होंने महात्मा से पूछ ही लिया—महाराज जी, आप रोज नदी किनारे आते हैं, कुछ देर बैठते हैं फिर चले जाते हैं। आप यहां बैठकर क्या करते हैं? महात्मा ने उससे पूछा—तुम कौन हो और क्या काम करते हो? उस व्यक्ति ने कहा—महाराज, मैं चौकीदार हूं, गेट पर बैठकर चौकीदारी का काम करता हूं कि कौन आदमी महल में जाने योग्य है, कौन नहीं। जो जाने योग्य होता है उसे महल में जाने देता हूं, जो जाने योग्य नहीं होता है उसे रोक देता हूं। महात्मा ने कहा—बस यही काम मैं भी करता हूं। मैं भी चौकीदारी का काम करता हूं। यहां ध्यान में बैठकर देखता हूं कि मन में उठने वाले कौन से विचार लेने लायक है, कौन से विचार लेने लायक नहीं है। जो विचार हितकर नहीं है, नुकसान करने वाला है उसे मैं अंदर जाने से रोक देता हूं और जो विचार नुकसानदेय नहीं है उसे ग्रहण करता हूं। हर आदमी इसीप्रकार अपने विचारों की चौकीदारी करना शुरू कर दे तो सारे टेंशन, चिंता, अवसाद, तनाव, कलह अपने आप शांत हो जायेंगे। मन की तरंग के कारण ही आदमी अंतरंग नहीं हो पाता है। जैसे तालाब के तरंगायित जल में तलहटी पर पड़ी हुई चीज साफ दिखाई नहीं देती परंतु जब तरंग शांत हो जाती है तो तलहटी पर पड़ी हुई हर चीज साफ-साफ नजर आती है। वैसे ही मन में उठने वाली इच्छाओं के वेग में बह कर आदमी बेचैन हो जाता है।

महात्मा बुद्ध ने आत्मसंयम की महत्ता बताते हुए कहा है—नेत्र का संयम अच्छा है, अच्छा है कान का संयम, नाक का संयम अच्छा है, अच्छा है जीभ का संयम, त्वचा का संयम अच्छा है, अच्छा है वाणी का संयम, मन का संयम अच्छा है अच्छा है सबका संयम। जब साधक सर्वत्र संयत रहता है तब वह सभी दुखों से मुक्त हो जाता है।

चक्खुना संवरो साधु साधु सोतेन संवरो।
घाणेन संवरो साधु साधु जिह्वाय संवरो॥
कायेन संवरो साधु साधु वाचाय संवरो।
मनसा संवरो साधु साधु सब्बत्थ संवरो॥
सब्बत्थ संवुतो भिक्खू सब्बदुक्खा पमुच्चति॥

11. आत्मज्ञान (अंतर्मुखता)—सुखी जीवन की अंतिम और महत्त्वपूर्ण चाबी है आत्मज्ञान (अंतर्मुखता)। आदमी पूरी दुनिया की जानकारी हासिल कर ले किंतु यदि उसे स्वयं की जानकारी नहीं है तो उसकी सारी जानकारी बेकार है। एक वाक्य में कहें तो जिसने दुनिया की सारी पोथी पढ़ ली किंतु जीवन की पोथी नहीं पढ़ी तो उसकी सारी पोथी बिलकुल थोथी है। रावण के लिए कहा जाता है कि वह वेदों का प्रकाण्ड पंडित था। चारों वेदों पर उनका सुन्दर भाष्य था। रावण राक्षस नहीं था बल्कि वह बलवान, धनवान, रूपवान भी था किंतु स्वयं का बोध न होने और खराब आचरण के कारण उन्हें राक्षस कहा गया। उनके विषय में कहा गया है—पढ़े लिखे क्या होत है, बिन जाने निज भेद। पढ़ कर भी राक्षस भये, रावण चारों वेद ॥ स्वामी शंकराचार्य ने दुनिया की सारी विद्याओं में से आत्मज्ञान की विद्या को श्रेष्ठ कहा है—सा विद्या या विमुक्तये। अर्थात विद्या वह है जो मुक्ति में सहायक हो। छांदोग्य उपनिषद् में देवर्षि नारद और महर्षि सनत्कुमार का आत्मज्ञान पर बड़ा लंबा उपाख्यान है। आत्मज्ञान की जिज्ञासा लेकर देवर्षि नारद महर्षि सनत्कुमार के पास जाते हैं और कहते हैं—भगवन, मुझे आत्मज्ञान की शिक्षा दीजिए। महर्षि सनत्कुमार कहते हैं—नारद, तुम जो कुछ जानते हो उसे पहले बताओ फिर मैं उसके आगे तुम्हारे लिए उपदेश करूंगा। यहां पर देवर्षि नारद कहते हैं—भगवन, मैं लौकिक समस्त विद्याओं को पढ़कर केवल शास्त्रों का पंडित हुआ हूं, मंत्रवेत्ता हुआ हूं, आत्मवेत्ता नहीं हूं। मैंने आप जैसे महापुरुषों से सुना है—"तरति शोकम् आत्मवित्"। अर्थात आत्मज्ञानी शोक से पार हो जाता है। मुझे आत्मज्ञान नहीं है, मैं शोक करता हूं। देवर्षि नारद की बातें सुनकर आत्मतत्त्व के बारे में लम्बा व्याख्यान देते हुए अंत में महर्षि सनत्कुमार कहते हैं कि जो भूमा (आत्मा) है, महान है, अनंत है, वही सुख है, अल्प में सुख नहीं है। भूमा ही सुख है। भूमा की ही जिज्ञासा करनी चाहिए।

महाराज श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि मनुष्य नाना शास्त्रों का भले ही पाठ करे, नाना प्रकार के देवताओं को भले ही प्रसन्न क्यों न कर ले जब तक उसे आत्मज्ञान नहीं होगा तब तक वे सारे कर्म निरर्थक हैं—

नाना शास्त्र पठेन लोके नाना देवत पूजनम्।
आत्मज्ञान बिना पार्थ सर्व कर्म निरर्थकम् ॥

नानक देव जी ने इसे बड़े ही सहज ढंग से कहा है—

जप तप पूजा पाठ सब, गुड़ियों जैसा खेल।
जब तक पिय परिचय नहीं, तब तक संशय मेल ॥

अर्थात जब तक पिय मतलब आत्मज्ञान, आत्मतत्त्व का बोध नहीं हो जाता तब तक मानव जीवन का जो उद्देश्य है उसकी प्राप्ति में संदेह है। मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य है आत्मबोध, आत्मज्ञान, आत्मकल्याण और मोक्ष को प्राप्त करना।

आज मनुष्य दुनिया की सारी चीजों पर अपना अधिकार कर लिया है। चांद एवं मंगल ग्रह तक की सैर कर लिया है अर्थात बाहर की सैर तो खूब किया और कर रहा है किंतु भीतर की सैर न करने की वजह से दुखी एवं परेशान है। एक मकान के दूसरे तल्ले पर सत्संग हो रहा था। तभी अचानक भूकम्प का झटका आया। भूकम्प का झटका आने से सारे श्रोतागण डर कर नीचे सड़क पर आ गये। कुछ देर पश्चात जब भूकम्प का झटका समाप्त हुआ तो लोगों को गुरु महाराज का ध्यान आया। इधर-उधर देखे तो गुरु महाराज जब कहीं दिखाई नहीं दिये तो सभी लोग पुनः सत्संग कक्ष में गये तो क्या देखते हैं कि गुरु महाराज यथास्थान अपनी गद्दी पर ध्यानस्थ बैठे हैं। भक्तों ने महात्मा जी से पूछा—गुरुदेव! अभी-अभी कुछ देर पहले भूकम्प का झटका हुआ था क्या आपको पता चला? महात्मा जी ने कहा—हां, मुझे पता है भूकम्प का झटका आया था। भक्तों ने पुनः पूछा—गुरुदेव! आप भागे क्यों नहीं? हम लोग तो सब डर कर नीचे की ओर भाग गये थे। महात्मा जी ने कहा—भागा मैं भी था। बस अंतर इतना था कि आप सब लोग बाहर की ओर भागे थे और मैं भीतर की ओर भागा था। जो भीतर जाता है वह तर जाता है और जो बाहर जाता है उसका सब कुछ (आत्मशांति) हर जाता है। मनुष्य आत्मशांति को, आत्मतत्त्व को बाहर तीर्थों में, मंदिरों में खोजता फिरता है। शिव जी ने पार्वती से कहा है—

इदं तीर्थं इदं तीर्थं भ्रमति तामसा जना।
आत्म तीर्थं न जानन्ति कुतः मोक्षः श्रृणु प्रिये।

अर्थात हे प्रिये! यहां तीर्थ है, वहां तीर्थ है ऐसा कहते हुए तामसी लोग जगह-जगह भटकते हैं। वे अपने भीतर आत्मतीर्थ को नहीं जानते तो ऐसे लोगों का मोक्ष कहां होगा। भर्तृहरि जी महाराज ने कहा है—दुनिया के सारे विषय भोगों से बढ़कर एक ऐसा भोग है जिसका संयोग होते ही सारे विषय भोग फीके लगते हैं। यहां तक कि इंद्र पद भी फीके पड़ जाते हैं—

कहा विषय को भोग, परम भोग इक और है।
जाके होत संजोग, निरस लागत इंद्र पद॥

स्वामी शंकराचार्य ने कहा है—"भले ही कोई शास्त्रों की व्याख्या करे, देवताओं का यजन करे, नाना शुभकर्म करे अथवा देवताओं को भजे जब तक आत्मतत्त्व का बोध नहीं होता तब तक सौ ब्रह्माओं के बीत जाने पर भी मुक्ति नहीं होगी।" गीता में महाराज श्री कृष्ण कहते हैं—"जो व्यक्ति अपनी आत्मा में प्रेम करता है, आत्मा में तृप्त होता है तथा आत्मा में ही संतुष्ट होता है उसको कुछ करना बाकी नहीं रहता।" इस देह में निवास करने वाला प्रकृति से परे जो चेतन पुरुष है वही द्रष्टा, अनुमंता (प्रेरक), भर्ता, भोक्ता, महान ईश्वर तथा परमात्मा है। कठोपनिषद् के ऋषि कहते हैं—"यह आत्मा स्वरूपतः अणु-से-अणु अर्थात अत्यंत सूक्ष्म है, परंतु ज्ञानगुण में महान-से-महान है। यह सभी प्राणियों की हृदय-गुफा में बैठा है। इसको वही देखता है, वही इसका साक्षात्कार करता है जो अक्रुत और वीतशोक है अर्थात जो कर्म-प्रपंचों से मुक्त एवं मानसिक दुखों से परे है। इंद्रिय-मन के शुद्ध हो जाने पर आत्मा अपनी महिमा में, अपनी गरिमा एवं स्थिति में प्रतिष्ठित हो जाता है।"

कहने को तो आदमी आज भौतिक सारी सुख-सुविधाओं से सम्पन्न है, फिर भी जितना दुखी आज इंसान है उतना सृष्टि का कोई प्राणी दुखी नहीं है। आदमी का मन इतना चंचल है कि वह हमेशा बाहरी वस्तुओं से तृप्ति चाहता है, उन्हीं वस्तुओं में सुख ढूंढता है। स्वरूपलीन सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी ने कहा है—"सुख ढूंढ़ रहे तुम वन में, गिरि गह्वर के कन्दर में। पर नहीं पता तू पाया, वह है तेरे अन्दर में॥" कबीर साहेब ने कहा है—मनुष्य का मन उस कस्तूरीमृग की तरह है जिसकी नाभि में ही कस्तूरी है किंतु अज्ञानवश वह मृग कस्तूरी के लिए वन-वन भटकता-फिरता है। ठीक ऐसे ही हर मनुष्य के हृदय में अनंत सुख का भण्डार वह आत्मा रूपी परमात्मा है किंतु स्वस्वरूप के अज्ञानवश वह चारों दिशाओं में भटकता फिरता है। साधनाभ्यास द्वारा धीरे-धीरे साधक को जब स्वस्वरूप, निज आत्मतत्त्व का बोध हो जाता है तब उसके मन के सारे हर्ष-शोक, चिंता-विषाद, तनाव दूर हो जाते हैं। ऐसे स्वरूपस्थ साधक वाद-विवाद को त्यागकर चित्र के दीपक की भांति स्थिर हो जाते हैं। सद्गुरु कबीर के सम्पूर्ण वांग्मय में आत्मबोध, आत्मज्ञान की ही चर्चा है। उन्होंने परोक्ष सत्ता की बातें न बता कर अपरोक्ष सत्ता की बातें बतायी। सद्गुरु कबीर ने कहा है—वह परमात्मा, बाहर नहीं बल्कि सबके दिल में बसा है—दिल में खोजि दिलहि मां खोजो, इहै करीमा रामा। बीजक के पाठफल में किसी संत ने सद्गुरु कबीर के स्वर को उभारा है। कहा गया है—बीजक उसे कहते हैं जो गुप्तधन का प्रमाण देता एवं पता बताता है। आत्मधन जिस जगह है कबीर साहेब के वचनों के उपदेश उसी के लिए है। आत्माराम ही सत्य है और मन-माया से निर्मित सारी अवधारणाएं एवं मान्यताएं असत्य हैं। बीजक गुरुमुख वाणी है, अतः उसकी यथार्थ परख इससे करनी चाहिए। मन-माया से लौटकर आत्माराम में स्थित होना यही प्रत्येक व्यक्ति का परम कर्तव्य है।

साधारण अनपढ़ व संसारी लोगों की बात ही नहीं पढ़े-लिखे बड़े-बड़े साधु-संन्यासी भी आत्मबोध, स्वरूपबोध के अभाव में दुखी, परेशान, चिंतित एवं तनावग्रस्त हैं। स्वयं का सुधार व कल्याण का काम तो नहीं कर पा रहे हैं और दुनिया को जगाने का, उद्धार करने का, भगवद्दर्शन कराने का जिम्मा लिये फिरते हैं। ऐसे लोगों के लिए किसी ने बड़ा ही सुन्दर कहा है—अरे सुधारक जगत के, मत कर चिंता यार। तेरा ही मन जगत है, पहले इसे सुधार।

अपना सुधार ही जगत के सुधार की दिशा में पहला कदम है। खुद पढ़कर ही दूसरे को कुछ पढ़ाया जा

सकता है, खुद वकालत पढ़-सीख कर ही दूसरे को वकालत के बारे में पढ़ाया या सिखाया जा सकता है। कीचड़ से कीचड़ कभी नहीं धुलता, साफ पानी से ही कीचड़ धुलता है। याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी के संवाद में याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा है—हे मैत्रेयी! जब हम अपने स्वार्थ के लिए, आत्मा के लिए ही सब कुछ चाहते हैं तब अपना आपा, अपना आत्मा ही देखने, सुनने, मनन तथा निदिध्यासन करने योग्य है। आत्मा के दर्शन, श्रवण, मनन से ही मानो सब कुछ जाना हुआ हो जाता है—

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्।

कठ उपनिषद् में ऋषि ने यम और नचिकेता के संवाद में यम से नचिकेता के प्रति कहलवाया है। यम नचिकेता से कहते हैं—ग्यारह द्वारों वाले शरीर रूपी नगर में अजन्मा, सरल शुद्ध चेतन देव निवास करता है। जो साधक उसी के ध्यान में लीन हो जाता है, वह किसी बात को लेकर शोक नहीं करता। वह शरीर रहते तक जीवन्मुक्त होकर रहता है और शरीर छूट जाने पर सदैव के लिए दुख-द्वंद्वों से रहित होकर विदेहमुक्त हो जाता है। हे नचिकेता! तूने जिसके विषय में पूछा है, वह यही आत्मा है—एतत् वै तद्। एक संत ने एक पद में बड़ा सुंदर कहा है—"विभिन्न खानियों में भटकते-भटकते बहुत दिन बीत गये, अब तक हम अपने निज घर (स्वस्वरूप घर में) में नहीं आये। पर स्वरूप को अपना स्वरूप मानकर भटकते रहे। अपना स्वरूप शुद्ध-बुद्ध, सुख का सागर है उस भाव में स्थित नहीं हुए।" सार यह है कि आदमी दुनिया में चाहे कितना भी भाग-दौड़ कर ले जब तक वह अंतर्मुख नहीं होगा तब तक उसे आत्मसंतोष, आत्मतृप्ति, आत्मलाभ, आत्मशांति नहीं मिल सकती। क्योंकि पर में नहीं स्व में ही आत्मशांति मिलती है। एक कवि ने बड़ा ही सुंदर कहा है—

एक पक्षी के थे बच्चे चार, घर से निकले पंख पसार।
उत्तर से दक्षिण को धाये, पूरब से पश्चिम को धाये।
घूम घाम कर जब घर को आये, माता को ये बचन सुनाये।
देख लिया हमने जग सारा, अपना घर है सबसे प्यारा॥

अपना घर है आत्मस्थिति, स्वरूपस्थिति। इस घर में जाने के लिए आज (मानव जीवन) का समय सबसे उत्तम है, कल का कुछ पता नहीं क्या होगा। ऐसे सुनहरे अवसर को चिंता, शोक, तनाव, अवसाद में न बितायें।

उपर्युक्त बताये गये ग्यारह चाबियों का जो इस्तेमाल करेगा निश्चित है उनके जीवन से सारे चिंता, शोक, तनाव, डिप्रेशन दूर हो जायेंगे।

मोक्ष

लेखक—श्री भावसिंह हिरवानी

धर्म के क्षेत्र में मोक्ष या मुक्ति पर सर्वाधिक चर्चा होती है। हमारे देश में कई धर्मों के मानने वाले रहते हैं, तथा उनकी मान्यताएं भी भिन्न-भिन्न हैं। अधिकांश धर्मावलंबियों का विश्वास है कि मरणोपरांत वे अपने इष्ट की कृपा से सांसारिक बंधनों से मुक्त हो जायेंगे और अनंत काल तक स्वर्ग या जन्नत में सुख भोगेंगे। कोई नहीं जानता कि यह सच्चाई है या महज कल्पना, क्योंकि जो गया, वह कभी लौटकर नहीं आया। चूंकि बात आस्था और विश्वास की है, इसीलिए यहां तर्क की गुंजाइश नहीं है।

वास्तव में यह संसार एक विचित्र पहेली है, जिसे आज तक कोई समझ नहीं पाया। विज्ञान और अध्यात्म दोनों के अपने-अपने सिद्धांत हैं। विज्ञान प्रगति के शिखर पर पहुंच गया है, किन्तु वैज्ञानिक अपनी धरती की उत्पत्ति और अंत की सटीक जानकारी देने की स्थिति में नहीं है। आज तक के अनुसंधान से यह भी

स्पष्ट हो गया है कि सिर्फ धरती पर ही जीवन का अस्तित्व है। पृथ्वी कैसे बनी, कब बनी, इसमें जीवन का आरंभ कब हुआ, इस पर मतभिन्नता है।

हिन्दू धर्मगुरुओं का मानना है कि इस संसार में एक अदृश्य शक्ति विद्यमान है, जिससे संपूर्ण ब्रह्मांड संचालित हो रहा है। वह सर्वगुणसंपन्न और सर्वशक्तिमान है। इसे परमात्मा, ब्रह्म, भगवान, ईश्वर इत्यादि नामों से पुकारा जाता है। इसी परमात्मा ने संसार-चक्र का सृजन किया और यही इसका अंत भी करेगा। उदारपंथियों का कहना है कि सब धर्मों में इस शक्ति का नाम अलग-अलग है, पर मूल तत्त्व एक है। इसलिए वे कहते हैं कि सबका मालिक एक है।

लेकिन कुछ लोगों की मान्यता इससे भिन्न है। उनका कहना है कि इस संसार में सर्वत्र एक नियम लागू है जिसे वेदों में ऋत कहा गया है। इसी नियम के कारण सारा ब्रह्माण्ड गतिमान है तथा ग्रह-नक्षत्र अपने-अपने परिक्रमा-पथ पर निरंतर घूम रहे हैं। यहां मौजूद प्राणी-पदार्थ दोनों शक्तिसंपन्न हैं। इन्हीं प्राणी-पदार्थों के संयोग-वियोग से सारा जीवन-चक्र चल रहा है। भौतिक पदार्थों की क्रिया-प्रतिक्रिया के कारण ही सारी प्राकृतिक घटनाएं घटित होती हैं। जीव और भौतिक तत्त्व दोनों अविनाशी हैं अर्थात इनका अंत नहीं होता। दूसरे शब्दों में जीव और जगत दोनों अनादि हैं, न इनका आरंभ हुआ, न इनका अंत होगा।

हिन्दू धर्म में दो विचारधारा प्रचलित हैं। पहली में जीव ईश्वर का अंश है और शरीरांत पश्चात अपने कर्मों के अनुसार स्वर्ग या नरक में चला जाता है। मुस्लिम धर्म में भी जन्नत और जहन्नुम की कल्पना की गयी है। दूसरी विचारधारा के अनुसार जीव स्वतंत्र, अजर, अमर है। वह अनादिकाल से अपने कर्मों के बंधन में बंधा भटक रहा है। अर्थात जीव कभी नहीं मरता। वह जीवन अवधि समाप्त होने पर इस शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर धारण कर लेता है। जैसे व्यक्ति पुराने कपड़े बदलकर नया पहन लेता है। मृत्यु इस संसार से बाहर जाने का मार्ग और जन्म इस संसार का प्रवेश द्वार है। यहां जन्म के साथ ही मृत्यु पीछे लग जाती है और मृत्यु के साथ ही नये जन्म की शुरुआत हो जाती है। इसीलिए जन्म-मृत्यु पर शोक-मोह करने की जरूरत नहीं है। निःसंदेह, विचार करने पर यह सोच जबर्दस्त संबल प्रदान करने वाला है। जीवन क्या है, दो घड़ी का मेला! अनंत काल-प्रवाह में यह कुछ वर्षों का जीवन कुछ घड़ी का मेला ही तो है। इसलिए संत कहते हैं, "कौन अपना है और कौन पराया है? जिंदगी में थोड़ी दूर साथ चले और हमेशा के लिए बिछुड़ गये हैं। इसीलिए मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए।"

तो मोक्ष क्या है? यहां भी दो मत हैं। पहला, प्रभु-कृपा से जीव को मृत्यु पश्चात मोक्ष मिलता है, और वह स्वर्ग-सुख भोगता है। दूसरा मत कहता है, मोह का क्षय हो जाना ही मोक्ष है। अर्थात जब तक इस संसार के प्राणी-पदार्थों के प्रति हमारी आसक्ति बनी रहेगी, हमें मोक्ष नहीं मिल सकता। आसक्ति तब खत्म होगी, जब हमारे मन से कामना मिटेगी, लेकिन हम तो रात-दिन कामना के वशीभूत भागे जा रहे हैं। छोटी-छोटी बातों को लेकर मरने-मारने पर उतारू हो जाते हैं। जितना है, उसमें किसी को संतोष नहीं है। जानते हैं, साथ में कुछ नहीं जायेगा लेकिन दुनिया की सारी संपत्ति इकट्ठा कर लेना चाहते हैं। रोज देख रहे हैं, छल-कपट करके करोड़ों बटोरे, बिना भोगे चले गये, पर हमारी आंखें नहीं खुलतीं! वह व्यक्ति धन्य है, जो जीते जी सांसारिक प्राणी-पदार्थों की आसक्ति त्यागकर निर्द्वन्द्व जीवन जीता है, यही मोक्ष की स्थिति है। इसी को संत कबीर सहज समाधि कहते हैं। यही परमानंद की प्राप्ति है। जीव की मुक्ति, मोक्ष या निर्वाण भी यही है। व्यक्ति अनासक्त जीवन जी कर मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

क्रोध के समय थोड़ा रुक जाये और गलती के समय थोड़ा झुक जाये, तो दुनिया की अनेकानेक समस्याएं अपने आप सुलझ जायेंगी।

प्रवचन

मन में दुख न होना ही ध्यान है

(परम पूज्यवर गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा दिनांक 21-5-2007 को कबीर पारख आश्रम, सणिया हेमाद, सूरत में ध्यान शिविर के अवसर पर दिया गया प्रवचन।—प्रस्तुति श्री रामकेश्वर जी)

पूजनीय संत समाज, प्रिय सज्जनो तथा देवियो!

मन में दुख न होना ध्यान है और यह ध्यान सब समय का है। एक ध्यान है जो विशेष अवस्था में किया जाता है और एक ध्यान है जो सब समय किया जाता है। उसी के लिए साहेब ने कहा है "ऊठत बैठत कबहुं न छूटे, ऐसी तारी लागी।" तारी का मतलब है ध्यान।

साहेब कहते हैं कि ऐसा ध्यान लगा कि उठते-बैठते कभी छूट नहीं रहा है। दुख न होना ध्यान है। अपने को दुख से बचाओ। अपने लोग अगर कटु भावना रखते हैं, कटु वचन कहते हैं और कटु व्यवहार करते हैं तो अमर्ष होता है, दुख होता है लेकिन जो अपने नहीं हैं वे ऐसा करें तो खास दुख नहीं होता है। जो अपने माने गये हैं उनके दुर्व्यवहार, दुर्भावना और दुर्वचन से दुख होता है लेकिन यह सोचो कि अपना कौन है? इस दुनिया में कोई अपना नहीं है।

"कोई नहीं जब आपना काहि मानि संताप।" यह विशाल देव की वाणी है। जब कोई अपना नहीं है तब किसको अपना मानकर संतापित हो? अपने लोग दुर्व्यवहार करते हैं तो कष्ट होता है और अपना कोई है ही नहीं। सब सजाति जीव हैं, सजाति आत्मा हैं। मेरे ही समान सब आत्माएं हैं, सब जीव हैं। जहां तक हमारा संबंध हो, सबसे हम समता और सभ्यता का बरताव करें। कोई हमारे साथ क्या करता है यह उसका विचार है। कोई अपना जब है ही नहीं, तब किसको अपना मान कर संताप हो?

यह दशा अभ्यास करने से आयेगी, केवल कहने-सुनने से नहीं आयेगी। विवेक से जान लेते हैं, कह देते हैं और सुन लेते हैं, लेकिन जब तक अभ्यास नहीं होगा तब तक चित्त में ऐसी स्थिरता नहीं आयेगी। जब यह बराबर अभ्यास हो कि कोई अपना नहीं है तब क्या तकलीफ है? किसने क्या कह दिया? जो कह दिया वह अपना है ही नहीं, फिर कष्टित क्यों होने लगे? 'रहत अकेले बन रमत' इस संसार-वन में जीव अकेला ही रम रहा है। जहां-जहां से संबंध होता है वहां-वहां से निकटता प्रतीत होती है, किंतु निकटता है नहीं। वहां तो निकटता का केवल आभास है।

आभास कहते हैं जो दिखाई दे कुछ, और रहे कुछ। आभास को भ्रम भी कहा जाता है। संसार में अपना मानने का आभास होता है और यही पीड़ा है। जहां संबंध होता है वहां अपना मानने के लिए मन नक्शा बनाने लगता है और यहीं से पीड़ा होने लगती है। अपना न माने तो पीड़ा न होगी। अपना न मानें तो उनके लिए पाप भी न करेंगे। तब हम केवल कर्तव्य करेंगे।

संभालो अपने को। सब तरफ से अपने को संभालने से ही कोई समाधि में जायेगा। अगर कोई मोह करता रहे, वैर करता रहे, कलह करता रहे, विवाद करता रहे, किसी के लिए मन में बनाये रखे कि यह हमारा दुश्मन है, यह हमारा विरोधी है और इसने हमें कष्ट दिया था तो उसके मन में शांति नहीं आयेगी।

कोई ऐसा हो सकता है कि जो अपने अबूझ से हमें कष्ट दिया हो लेकिन इससे तो वही कष्टित हुआ होगा। हमें कष्ट तो हमारे अज्ञान से ही होता है। हमें अज्ञान न हो तो हमें कष्ट न होगा। अगर ऐसी स्थिति आयेगी तो उसको निर्विकार भाव से सह लिया जायेगा। किसी स्थिति को निर्विकार भाव से सह लेना साधना की ऊंचाई है। अनुकूल को भी सहना है और प्रतिकूल को भी। अनुकूल को सहने की क्षमता जिसको होती है उसको अनुकूल में राग नहीं होता है।

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव यो अवतिष्ठित नेंगते॥

(गीता 14/23)

'उदासीनवत् आसीनः' उदासीन के समान स्थित, न मोह न वैर, न अपना न पराया। जो 'उदासीनवत् आसीनः' है 'गुणैर्यो न विचाल्यते' गुण उसको विचलित नहीं कर पाते। गुण कहते हैं विषयों को। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गंध ये पांच विषय हैं, इन्हीं को पांच गुण भी कहते हैं।

ये गुण अर्थात विषय उसको विचलित नहीं करते हैं। गुण का दूसरा अर्थ है सत, रज और तम। क्रिया रज है, पुष्टि सत है और क्षरण तम है। सत, रज और तम तीन गुण हैं। जो उदासीन के समान स्थित रहता है उसको विषय विचलित नहीं कर पाते हैं।

वह समझता है 'गुणा वर्तन्त इत्येव' गुण ही गुण में बरतते हैं। 'इति एव' यह समझकर कि गुण ही गुण में बरतते हैं वह समता में रहता है। बाल पकते हैं, चाम में सिकन आती है, दांत उखड़ते हैं, ठण्डी होती है और गरमी होती है। यह सब प्रकृति का खेल है।

'यो अवतिष्ठित नेंगते' वह स्थित रहता है, प्रकम्पित नहीं होता, चंचल नहीं होता, व्यथित नहीं होता। उदासीन होने का यही लक्षण है। तटस्थ होना, उदासीन होना यही है कि दुखी नहीं होता है।

दुख न होना जीवन की सबसे बड़ी सफलता है और यह अपने वश में है। दो रास्ते हैं—एक भोग का और दूसरा योग का। दोनों रास्ते एक दिशा में नहीं अपितु विपरीत दिशा में चलते हैं। जो भोग के साथ योग चाहता है वह भोला है क्योंकि भोग का पथ अलग है और योग का पथ अलग है। दूसरा विषय है कि भोग में योग साधे। भोग को कम करे। तुरन्त भोग से एकदम अलग तो नहीं हो जाते हैं। गृहस्थ हैं तो धीरे-धीरे वे भोग में योग सीखें। उनके लिए सद्गुरु का यही तो निर्देश है—'भोग में योग सिखावै।'

'भोग में योग सिखावै' का अर्थ है कि ज्ञानी गुरु भोग में योग सिखाता है। कितने गृहस्थ महंत इसका अर्थ करते हुए कहते हैं कि देखो, कबीर साहेब ने कहा है कि भोग करते रहो तो योग बनता रहेगा। लेकिन यह अर्थ नहीं है। अर्थ है कि ज्ञानी गुरु भोग में योग सिखाता है। सब जीव भोगी हैं वह उनको योग सिखाता है। भोग में रहते हुए उसे कम करो तब योग बनेगा। जहां हो वहीं से तो काम करोगे। कोई भोगी है वह योग शुरू करता है तो उसका भोग घटता है और करते-करते खत्म भी हो जाता है। नहीं खत्म होता है तो जितना वह खत्म कर लेता है उतना शांति पाता है।

गृहस्थों के लिए भी यह जरूरी है कि वे समझें कि भोग और योग के रास्ते अलग-अलग हैं। भोगी बने रहो तो योग बन जायेगा यह भ्रम है। भोग को छोड़ना है, जितना छोड़ पाओ। कम करते जाओ-कम करते जाओ। कम करते-करते, छोड़ते-छोड़ते जितना छोड़ ले जाओ उतना सुख है। अगर बिलकुल छोड़ ले जाओ तो बहुत उत्तम है।

जहां बोध में ही भ्रम है वहां गड़बड़ है। यह मान लिया गया कि भोग और योग में फर्क नहीं है, अपने को निर्लिप्त समझे। यह समझे कि इन्द्रियां ही व्यवहार करती हैं। आत्मा तो निर्लेप है और मैं इन्द्रियां नहीं हूं। इन्द्रियां भोग करें उसमें मुझ आत्मा का क्या नुकसान होता है। यह विचार नहीं किंतु अविचार है। व्यवहार तो इन्द्रिय और मन का ही होता है और उसी का दाग लगता है फिर ऐसा हो जाता है कि 'मलि-मलि धोये दाग न छुटिहैं।' दाग लगने में बड़ी सरलता है लेकिन उनके धुलने में बड़ी कठिनता है।

बीड़ी-तम्बाकू की आदत लगने में देरी नहीं लगती, परंतु छोड़ने में कितना कठिन है। कोई आदत डालने में देरी नहीं लगती है, उसको समाप्त करना पिनाक हो जाता है, इसलिए डरना चाहिए कि कोई खराब आदत लगने न पावे। अपने को संभालो और बोध सही करो। बोध सही हो तो आज नहीं तो कल, मंजिल पा जायेंगे। लेकिन बोध ही अगर गड़बड़ है तो मंजिल कभी नहीं पायेंगे। दिशा सही हो और पथ सही हो तो चाहे धीरे-धीरे चलेंगे, चाहे बैठे-बैठे चलेंगे, चाहे घसिटते-घसिटते चलेंगे, मंजिल पर कभी न कभी पहुंचेंगे। इसको समझाने के लिए एक कहानी है।

नारद जी एक बार भगवान विष्णु के पास वैकुण्ठधाम जा रहे थे। यह भी समझ लीजिए कि जिस तरह से लोग मानते हैं उस तरह से न कहीं विष्णु

भगवान हैं और न कहीं वैकुण्ठ है। यह तो एक कहानी है और नारद जी को हर जगह भुनाया जाता है। नारद एक ऐसे पात्र हैं कि हर युग में उनकी पात्रता रहती है। यह कथा के लिए जोड़ा जाता है।

नारद की गति अबाध थी। वे कहीं भी आते-जाते थे। दो तपस्वी तपस्या कर रहे थे। उनमें एक केला के पेड़ के नीचे बैठा तप कर रहा था और दूसरा इमली के पेड़ के नीचे। दोनों थोड़ी-थोड़ी दूर पर थे। दोनों ने नारद जी से निवेदन किया कि महाराज, आप भगवान विष्णु के पास जा रहे हैं और हम लोग उनके ही दर्शन पाने के लिए तप कर रहे हैं। लेकिन पता नहीं कब उनके दर्शन मिलेंगे। यह बहुत अच्छा संयोग है कि आप उन्हीं के यहां जा रहे हैं। इसलिए हम दोनों का यही निवेदन है कि आप भगवान से पूछियेगा कि उनके दर्शन हम लोगों को कब मिलेंगे।

नारद जी भगवान विष्णु के यहां गये और जब वहां से लौटे तो उन तपस्वियों से मिले। उन्होंने दोनों से कहा कि देखो! भगवान ने कहा है कि जो जिस पेड़ के नीचे बैठा है उस पेड़ में जितने पत्ते हैं उतने वर्षों के बाद उसको दर्शन मिलेगा।

केला के पेड़ के नीचे जो तपस्वी बैठा तप करता था उसने ऊपर देखा तो कुल चार पत्ते थे। उसका मन बैठ गया कि चार वर्ष तक मैं यहीं बैठकर तप करूंगा तब भगवान मिलेंगे। यह तो बड़ा कठिन है। वह उठा और घर चला गया।

जो तपस्वी इमली के पेड़ के नीचे बैठा तप कर रहा था उसने नारद जी की बात सुनी तो खुशी से नाचने लगा कि भगवान ने वचन तो दिया। इस पेड़ के पत्ते असीम नहीं हैं किंतु सीमित हैं। जितने पत्ते हैं कोई चिंता नहीं है। मैं उनके लिए तप करूंगा।

कहते हैं कि तब भगवान विष्णु तुरन्त प्रकट हो गये और उसको दर्शन दे दिये। बात को समझाने का यह तरीका है। न कहीं विष्णु हैं, न वैकुंठ। आत्मा विष्णु है और मन का कुंठारहित निर्मल हो जाना वैकुंठ है। जिसके मन में वेग है वह जल्दी पहुंचेगा, जो शिथिल है वह देर में पहुंचेगा, और जो बैठ गया, वह कभी नहीं पहुंचेगा। वेग होना चाहिए और वेग के साथ-साथ स्थिर समझ होनी चाहिए कि कहां पहुंचना है। साहेब ने कहा है—

साहेब साहेब सब कहैं, मोहि अंदेशा और।
साहेब से परिचय नहीं, बैठोगे केहि ठौर॥

(बी. सा. 181)

साहेब, स्वामी, परमात्मा, ब्रह्म, निर्वाण, कल्याण, मोक्ष, वैकुण्ठ, अल्लाह, खुदा तो सब कहते हैं। साहेब कहते हैं कि मुझे तो यह अंदेशा है कि तुम्हें साहेब से परिचय तो है नहीं फिर तुम 'बैठोगे केहि ठौर' किस जगह बैठोगे? यह सब लाक्षणिक कथन है। बैठने का मतलब है स्थित होना। साहेब पूछते हैं कि कहां स्थित होगे?

"ता मन को चीन्हों मोरे भाई, तन छूटे मन कहां समाई।" मन को कहां स्थिर करना है। मन को जहां स्थिर करना है उसका पता ही नहीं है। लोगों ने भगवान की कल्पना की और जिसने जैसी कल्पना की है वैसा ही मान लिया। किताबों में जैसा लिखा है वैसा मान लिया या अपने ढंग से भी उसमें कुछ तरमीम कर लिया। इस प्रकार कुछ मान लिया। लेकिन उसका वह परमात्मा मान्यता का है और वह मन ही है। मन से अलग वह कहां है? उससे शांति कहां मिलनेवाली है? इसलिए यथार्थ समझ होना चाहिए कि मन को कहां ठहराना है। यह स्वरूपबोध से ही होगा।

स्वरूपबोध कल्याण का राजमार्ग है। स्वरूपबोध ही आत्मबोध है। असली भक्ति आत्मचिंतन ही है, आत्मस्थिति ही है। पहली भक्ति है जो आत्मस्थ है, आत्मलीन है, आत्मसंतुष्ट है ऐसे संत के पास जाना। उनसे सीखना, समझना और निर्देश लेना। और अंतिम भक्ति है अपने आप में समा जाना। सद्गुरु यही तो कहते हैं—

जो तू चाहै मूझको, छाँड़ सकल की आस।
मुझ ही ऐसा होय रहो, सब सुख तेरे पास॥

(बी. सा. 298)

अगर तू मुझे चाहता है तो जैसे मैं हूं वैसा ही तू भी हो जा। ठीक से समझ लेना आधा मोक्ष है और बाकी आधा साधना का फल है। कितने साधकों को यथार्थ गुरु नहीं मिलते हैं लेकिन वे बड़े ईमानदार होते हैं। वे दिल से सच्चे त्यागी हैं लेकिन बोध नहीं है तो भटकते हैं। जब तक परोक्ष में मन रहेगा तब तक भटकता रहेगा। यह कई बार कहा जाता है कि प्रत्यक्ष, परोक्ष और अपरोक्ष तीन हैं।

यह संसार प्रत्यक्ष है जिसमें सब लोग डूबे हैं। प्रत्यक्ष में ही सब व्यवहार कर रहे हैं और उसी में ममता-मोह करके रो भी रहे हैं। मन की अवधारणा परोक्ष है; और स्वयं अपरोक्ष है। वास्तविकता है अपने आप में स्थित हो जाना। पारखी संत स्वरूप में स्थित होने के लिए कहते हैं। वेदान्ती भी यही कहते हैं, सांख्यवादी और योगवादी भी यही कहते हैं। बौद्ध भी यही कहते हैं। वे अपने ढंग से कहते हैं लेकिन वे भी यही बात कहते हैं—

अत्तना चोदय'त्तानं पटिवासे अत्तमत्तना।
सो अत्तगुत्तो सतिमा सुखं भिक्खु विहाहिसि॥

(धम्मपदं, 25/20)

यह तथागत बुद्ध की वाणी है। 'अत्तना चोदय'त्तानं' आत्मा को आत्मा के द्वारा ही प्रेरित करे, अपने को जगाये। किसमें सो रहा है? किसको अपना मान रहा है और कहां सुख खोज रहा है? इस प्रकार सोचे और मोह को भंग करे।

'पटिवासे अत्तमत्तना' अत्तमत्तना अर्थात आत्मा के द्वारा आत्मा में 'पटिवासे' निवास करे। 'प्रतिवसेत आत्मना आत्मनः' आत्मा के द्वारा आत्मा में ही संतुष्ट हो जाये। अपने आप तृप्त हो जाये। 'सो अत्तगुत्तो' वह अत्तगुत्त है। संस्कृत में गुप्त होता है और पालि में गुत्त होता है। 'सो अत्तगुत्तो', 'सः आत्मगुप्तः' वह आत्मगुप्त है यानी आत्मसुरक्षित है। गुप्त का मतलब है सुरक्षित।

'सो अत्तगुत्तो सतिमा' वह आत्मगुप्त है, आत्म सुरक्षित है और स्मृतिमान है, अपने में जागृत है। 'सुखं भिक्खु विहाहिसि' ऐसा ज्ञानी सुखपूर्वक विहार करता है। जो स्वयं अपने को जगाता है और अपने द्वारा अपने में संतुष्ट होता है वह आत्मसुरक्षित हो जाता है क्योंकि वह आत्मजागृत है। वह सुखपूर्वक रहता है। यहां तथागत की बात पूरी की पूरी वही है जो वेदान्त और पारख की है।

विवेकियों के जितने मार्ग हैं सबका निश्चय यही है कि अपना लक्ष्य अपने से अलग नहीं है। आपका उद्देश्य आपसे अलग नहीं है। आपकी मंजिल आपसे अलग नहीं है। वहां द्रष्टा-दृश्य-दर्शन विलय है। यह पारख सिद्धान्त के अनुसार भी है और वेदान्त के अनुसार भी। द्रष्टा औपाधिक है, संबंध में है। मन-इन्द्रियों का संबंध है तभी द्रष्टा है और मन तथा इन्द्रियां जब लुप्त हो गयीं तब द्रष्टा कहां है। जब द्रष्टा नहीं तो दृश्य कहां है और दर्शन कहां है! लेकिन यहीं समझने में ध्यान रखना चाहिए। क्योंकि कोई विचारक कह देता है कि जड़-चेतन सब कुछ एक ही है तो द्रष्टा-दृश्य-दर्शन विलय को वे सब एक ही मान लेते हैं और यही धोखा है। जड़-चेतन एक नहीं हैं। दोनों अलग-अलग हैं। साक्षी साक्ष्य से अलग है।

जब वह साक्षी नहीं रहता है तब भी साक्ष्य से अलग रहता है। मेरे सामने यह टेबल पड़ी है। इस टेबल से मैं अलग हूं। जब मैं बिस्तर पर सो गया तो टेबल का ख्याल नहीं रहा लेकिन तब भी टेबल मेरा स्वरूप तो नहीं हुआ। जब जगा तब भी टेबल अलग है और सोते समय भी टेबल अलग है। जब जागता हूं तब टेबल को जानता हूं। नहीं जागता हूं तो नहीं जानता हूं। सुषुप्ति अवस्था में नहीं जाना जाता है। समाधि में द्रष्टा-दृश्य-दर्शन विलय हो जाता है। जब चित्त शांत हो गया तो आत्मा द्रष्टा नहीं रहा। परंतु तब भी द्रष्टा जड़-दृश्य से अलग है।

पतंजलि महाराज ने उस अवस्था को कहा है 'दृश् मात्रः' वह चेतन मात्र रह गया। इसीलिए वहां कहा गया—'आत्मभाव भावना विनिवृत्तिः।' आत्मभाव भावना की वहां विनिवृत्ति हो जाती है। आत्मभाव

भावना है कि मैं कौन हूं, मेरा क्या है, जगत क्या है, मैं किसमें फंसा हूं? यह आत्मभाव भावना है और बिरले को यह होती है। सबको यह नहीं होती। सब भटकते हैं, खाते हैं, पीते हैं, सोते हैं, जागते हैं, रोते हैं, लड़ते हैं, झगड़ते हैं और मर जाते हैं, लेकिन आत्मभाव भावना नहीं होती। बिरले को आत्मभाव भावना होती है कि मैं कौन हूं, जगत क्या है, मुझसे अलग क्या है और मेरी स्थिति क्या है? इस प्रकार आत्मा के विषय में चिंतन होना आत्मभाव भावना है।

जब उच्च स्थिति में साधक पहुंच जाता है, स्वरूपलीन हो जाता है, तब 'आत्मभाव भावना विनिवृत्तिः' आत्मभाव भावना बिलकुल मिट जाती है। बोध हो गया कि मैं शुद्ध चेतन हूं और जड़-दृश्य से अलग हूं तो अब शंका ही नहीं रही और आत्मभाव भावना समाप्त हो गयी।

जैसे सूरत आना था तो रास्ते में पूछते रहे कि सूरत कितनी दूर है। जब सूरत आ गये तो सूरत कितनी दूर है यह पूछने की जरूरत ही खत्म हो गयी क्योंकि सूरत पहुंच गये। आत्मा को समझ लिया और आत्मा में स्थित हो गया, आत्माराम हो गया तो आत्मभाव भावना खत्म हो गयी। अब उसमें तो निवास ही हो रहा है, अब उसको सोचने की जरूरत ही क्या है?

जब साधक मन को देखता है तब द्रष्टा है और जब मन लीन हो गया तब वह किसको देखे! तब वह द्रष्टा नहीं है, और द्रष्टा नहीं है तो सामने दृश्य नहीं है, दृश्य नहीं है तो दर्शन नहीं है। द्रष्टा और दृश्य का संबंध दर्शन है। जैसे आदमी द्रष्टा है और दीवार दृश्य है। दीवार और आदमी के बीच में जो ज्ञान हो रहा है वह दर्शन है। यही द्रष्टा-दृश्य-दर्शन है।

चेतन द्रष्टा है, चित्त दृश्य है और बीच में जो अनुभव होता है वही दर्शन है। चित्त ही दृश्य है। चित्त के बाद फिर जगत दृश्य होता है। जैसे कोई भवन में ऊपरी तल्ले पर बैठा हो और वहां के एक छेद से बाहर के दृश्य को देखता है। तो पहले वह छेद को देखता है तब छेद से वह जगत को देखता है। वैसे ही आत्मा द्रष्टा है और चित्त छेद है। चित्त ही मुख्य दृश्य है और चित्त के द्वारा जगत को देखता है। चित्त लीन हो जाये तो जगत उसके लिए लीन हो जायेगा। जगत जहां है वहां वह रहेगा, खत्म नहीं होगा लेकिन उसका अनुभव नहीं होगा। इसलिए मानो जगत लीन हो गया।

कुछ का विचार यह है कि जगत ज्ञान मात्र है, लेकिन पारखी का विचार है कि जगत ज्ञान मात्र नहीं है। जगत का हम ज्ञान करते हैं। हमारे ज्ञान से जगत का अलग अस्तित्व है। कुछ विचारक कहते हैं कि नहीं, जगत का अस्तित्व है ही नहीं। वह तो ज्ञान मात्र है। जानते हैं तब है; और नहीं जानते हैं तब नहीं है। लेकिन हम जानें चाहे न जानें, जगत तो है ही। जब हम गाढ़ी नींद में थे तब जगत को नहीं जानते थे लेकिन तब भी जगत था। जब नींद खुली तब फिर जगत दिखाई देने लगा।

हम रात में बिस्तर पर सोने चलते हैं और टेबल सामने पड़ी है। टेबल को हम जानते हैं। लेकिन जब सो जाते हैं तब भी टेबल पड़ी रहती है। हम उसको जानते नहीं हैं और जब नींद खुलती है तब फिर टेबल को देखते हैं। अतः टेबल ज्ञान मात्र नहीं है। हमारे ज्ञान से टेबल का अलग अस्तित्व है। टेबल है इसलिए उसका हम ज्ञान करते हैं। अगर टेबल का अलग अस्तित्व होता ही नहीं तब हम उसका ज्ञान कैसे करते! हां, टेबल कभी मिट जायेगी, मिट्टी हो जायेगी, राख हो जायेगी। दूसरे रूप में हो जायेगी तब भी वह रहेगी लेकिन दूसरे रूप में रहेगी। उसके परमाणु रहेंगे। इसलिए जगत ज्ञान मात्र नहीं है, किंतु हम जगत का ज्ञान करते हैं। हम से जगत अलग है। जब उसको हम नहीं जानते हैं तब उसका संबंध हमसे कट जाता है। दृश्य को द्रष्टा जानता है और जान-जानकर वह उसमें रीझता और खीझता है। यही उसका दुख है और यह दुख विवेक से मिटेगा। जब तक देह है जब तक जगत दृश्यमान रहेगा, सामने रहेगा। जब तक देह रहेगी, सारा प्रपंच रहेगा, अनुकूल और प्रतिकूल रहेगा।

विवेक से अपने को निकालकर रखोगे तब दुखी नहीं होओगे। अगर अविवेकी रहोगे तो दुखी रहोगे और जिंदगी भर रोते रहोगे। अविवेकी रहकर ही पूरी जिंदगी

रोते रहे और आगे भी रोते रहोगे। यही खास काम करना है कि अपने को जगत दृश्य से निकाल लेना है। चित्त से चेतन अलग है। चेतन चित्त से अपने को निकाल ले। सदैव चित्त का द्रष्टा रहे, चित्त में मिले न। जो सब समय चित्त का साक्षी बना रहे वह दुखी नहीं होगा।

सारा प्रपंच मिलता है और छूटता है, बनता है और बिगड़ता है। सारा दृश्य निरंतर गतिशील है। इसमें अपनी कोई स्ववशता नहीं है। सब पदार्थ क्षरणशील हैं। जो निर्मित हैं वे कटेंगे, टुटेंगे। सबका मन चंचल है, बदलने वाला है। इसलिए किसी के मन पर अवलम्बित होना अपने को धोखा देना है और चीजों पर राग करना अपने को धोखा देना है। जो चीजें एक क्षण सुन्दर लगती हैं वही दूसरे क्षण विद्रूप लगती हैं। किसी की बात एक समय प्रिय लगती है और फिर अप्रिय लगती है। यह संसार का तमाशा है। इससे ऊपर उठे बिना कोई दुख से मुक्त नहीं हो सकता।

दुख से मुक्त होने के लिए लोगों में बुद्धि है कि अच्छा मकान बनाओ, खूब पैसा जमा करो और संगी-साथी खूब बना लो जो भोग में सहयोगी हों। भोली बुद्धि का आदमी इस प्रकार सोचता है। सारा संसार भोली बुद्धि का है। लोग ठोकर पर ठोकर खाते हैं लेकिन कहां समझ पाते हैं! प्राणी और पदार्थ से सुख नहीं मिलेगा। इन सबका सुख क्षणिक होगा और फिर दुख होगा।

असली सुख है चित्त की स्थिरता, निष्काम और निर्मान हो जाना। सब तरफ से अपने को छुड़ा लेना। यही सुख का रास्ता है। इस रास्ते पर चलो और अपने को दुख से मुक्त करो। जीवन की यही सफलता है। साहेब का यही निर्देश है कि दुख से अपने को छुड़ा लो "बहुत दुःख दुख दुख की खानी। तब बचिहो जब रामहि जानी।"

कबीर साहेब आत्मज्ञानी पुरुष थे इसलिए वे आत्मा पर जोर देते हैं। आत्मा को वे राम कहते हैं, जीव कहते हैं और कहते हैं 'तब बचिहौ जब रामहि जानी' साहेब कहते हैं कि तुम राम हो।

अगर राम का अतिशब्द किया जाये तो कहा जायेगा कि तुम ब्रह्म हो, तुम परमात्मा हो, तुम खुदा हो, तुम गॉड हो। बड़े शब्दों में तुम्हारे लिए जो कुछ कहा जाये, कम है। तुम्हारी स्थिति सर्वोच्च है उसको समझो। तुम अपनी गरिमा और महिमा को समझो। आत्मा सर्वोच्च तत्त्व है। अपने को समझकर अपनी महिमा में हरदम रहो फिर दुख नहीं होगा। यह दुनिया का कूड़ा-कचरा राग-द्वेष भरा संसार मैला है।

"यह संसार सकल है मैला, राम गहे ते सूचा। कहैं कबीर राम नहिं छाँड़ो, गिरत परत चढ़ि ऊंचा।" साहेब कहते हैं कि यह सारा संसार मैला है, कचरा है। यहां राग-द्वेष है, मलिनता है। यहां सबकी बुद्धि देह तक है। इसलिए भोगबुद्धि है, चीजों के लिए और भोग के लिए छीना-झपटी है। पद के लिए छीना-झपटी है। चारों तरफ मारा-मारी है और चारों तरफ कलह है। जो जितना निष्काम और निर्मान रहेगा उतना ही वह सुखी रहेगा। भोग के लिए कलह है तो भोग की इच्छा छोड़ दो। पद के लिए कलह है तो पद की कामना छोड़ दो। सम्मान के लिए कलह है तो सम्मान की इच्छा छोड़ दो।

साहेब ने कहा—'भेष भुलाना कान।' भेषधारी मर्यादा में भूल गये। किसकी मर्यादा है! ज्ञान और वैराग्य की मर्यादा तो खत्म हो गयी, गद्दी की मर्यादा हो गयी। लकड़ी का तख्ता, कपड़ा और रुई, बस, यही गद्दी है। ऐसी बड़ी-बड़ी गद्दियां सेठों के पास बहुत होती हैं।

जीव चारों तरफ भटकने का कारण बना लेता है और हर जगह उलझ जाता है। जो सब तरफ से अपने को बचा पाये उसी का मंगल है। निरंतर जागरूक व्यक्ति सुखी होगा। खास बात है अहंकार और कामना को छोड़ना। एक अहंकार ही कह दिया जाये तो काफी है क्योंकि अहंकार में कामना है। अहंकार महा पाप है, जहर है। यही जलाता रहता है।

हमारे चित्त में जो उद्वेग होता है उसके मूल में अहंकार ही है। किसी ने कुछ कह दिया है इसलिए उद्वेग है। कह दिया तो कह दिया, अब उद्वेग क्यों है? क्योंकि

अहंकार है। अगर हमारा अहंकार मरा रहे तो कुछ नहीं लगेगा। कोई कुछ कह दिया तो कह दिया। अपने अहंकार के मरने के बाद फिर कोई चक्कर नहीं है। इसलिए साधक को अहंकार को निरंतर मारना चाहिए। अपने को निरन्तर गढ़ना, बनाना और छीलना चाहिए। यही अध्यात्म का रास्ता है।

निरंतर अपने को गढ़ो, छीलो, रन्दो और मांजो। इस प्रकार अपने को चमका लो और आत्मविजय करो क्योंकि आत्मविजय ही विश्वविजय है। देखते-देखते समय समाप्त हो जायेगा। कितना बढ़िया समय है। हम लोग चलते-फिरते हैं, बोलते-चालते हैं, टहलते-घूमते हैं और समझते हैं। अभी हाथ-पैर गतिशील हैं, मस्तिष्क गतिशील है। बाहर प्रकृति का विशाल वरदान मिला ही है। हवाएं चल रही हैं। सूरज चमक रहा है। पेड़-पौधे उगे हैं। प्राणप्रद वायु आ रहा है। इतना ऐश्वर्य हमें मिला है फिर और क्या चाहिए? अब एक ही काम है कि वासना का त्याग करो और यह समझो कि संसार सपने की तरह है।

सपने में बहुत कुछ दिखाई दिया लेकिन नींद टूटी कि सब खो गया। यह सब सपने की तरह है। गाढ़ी नींद में मैं भूल गया था। सोया तो पता नहीं रहा कि कहां हूं। जब नींद खुली तब लगा कि सूरत आश्रम में हूं। एक दिन सांस टूट जायेगी फिर सब गायब हो जायेगा। सबका गायब होता है। यह जो अनुकूलता हमें मिली हुई है बहुत क्षणिक है, इसमें हम अपना पूरा काम कर सकते हैं।

साधक को जग जाना चाहिए, संसार की क्षणभंगुरता को निरन्तर देखना चाहिए और अपनी अमरता, सत्यता और स्थिरता को देखना चाहिए। इसीलिए साहेब ने कहा कि क्यों क्षणिक वस्तुओं में उलझ गये हो— 'कहहु हो अम्मर कासों लागा।' ऐ अम्मर! तू तो अमर है। तू किसमें लगा है? तू जिसमें लगा है वह क्षणिक है। किसमें लगा है? उसी में लगा है जो अभी है और कुछ क्षण में नहीं है। उसी को लेकर तू पुल-पुल करके रोता है, हानि-लाभ मानता है, सुख-दुख मानता है, कम-ज्यादा मानता है और बिलबिलाता है। जो अभी है और अभी नहीं है, उसी को तू अपनी निधि समझता है। यह तुम्हारी कितनी बड़ी भूल है?

पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा, ये तीन ऐषणाएं हैं। बहुत पुराने जमाने में ऋषियों ने कहा है कि पुत्रैषणा हुई कि मुझे पुत्र प्राप्त हो। फिर वित्तैषणा हुई अर्थात मुझे धन की प्राप्ति हो। फिर लोकैषणा हुई कि लोक में मेरी प्रसिद्धि हो। यह लोकैषणा अधिक जबरदस्त है यद्यपि है इसमें कुछ नहीं। लेकिन इस कुछ नहीं को समझना बहुत मुश्किल है। इसको तो वही समझ पायेगा जो निरन्तर इस पर चिंतन करेगा। जो जगत की वास्तविकता को निरन्तर देखेगा वही इसको समझ पायेगा। जब समझ पायेगा तो उसका सब राग टूट जायेगा। फिर उसके सारे संस्कार ध्वस्त हो जायेंगे। उसका मन निर्भय होकर आत्मलीन और आत्मसंतुष्ट हो जायेगा।

मैंने कहा था कि दुख से रहित रहना ध्यान है। हर समय दुख से रहित रहो और यह विवेक के प्रखर होने से ही होगा। विशेष समय में हम जो ध्यान करते हैं, बैठकर चित्त एकाग्र करते हैं, वह विवेक में ढल जाये, सब समय विवेक जाग्रत रहे तो कभी भी विचलन नहीं होगा।

शय्याऽऽसनस्थोऽथ पथि व्रजन् वा स्वस्थः परिक्षीणवितर्कजालः।
संसारबीजक्षयमीक्षमाणः स्यान्नित्यमुक्तोऽमृतभोगभागी॥

अर्थात शैया पर लेटा हो, आसन पर या कुर्सी पर बैठा हो अथवा रास्ते में चलता हो। स्वस्थ हो, अपने में स्थित हो। चाहे लेटा हो, चाहे बैठा हो, चाहे चलता हो, अपने आप में मग्न हो, अपने आप में डूबा हो, आत्मलीन हो। 'परिक्षीणवितर्कजालः' वितर्कजाल परिक्षीण हो। वितर्कजाल का अर्थ है मन का कुतर्क, प्रतिक्रियाएं, रिएक्शन।

हर आदमी का चित्त निरन्तर रिएक्शन में जूझता है। अन्दर-अन्दर युद्ध चलता है। युद्ध तो उसको नहीं कह सकते हैं क्योंकि युद्ध तो तब कहा जायेगा जब विकारों को नष्ट करने के लिए काम किया जाये। इसलिए वह युद्ध तो नहीं कर रहा है बल्कि दुश्मनों से रगड़ा जा रहा है। 'परिक्षीणवितर्कजालः' जिसका वितर्क

जाल परिक्षीण है। जिसकी मानसिक ग्रंथियां कट गयीं हैं, कोई कुतर्क नहीं है, उसके चित्त में कोई उद्वेग नहीं आता है। किसी व्यक्ति और वस्तु को लेकर सोचा नहीं करता है, प्रत्युत शांत रहता है।

'संसारबीजक्षयमीक्षमाणः' संसार बीज है मोह। उसको 'क्षयमीक्षमाणः' 'क्षयम्' नष्ट करने की दृष्टि से 'ईक्षमाणः' देखता हुआ। ईक्षण कहते हैं देखने को और ईक्षमाणः कहते हैं देखते हुए। वह मोह को नष्ट करने की दृष्टि से देखता रहता है। 'स्यान्नित्यमुक्तो अमृत-भोगभागी' वह नित्य मुक्त है और अमृतभोग का भागी है। साधकों ने अपने-अपने ढंग से कैसे-कैसे अमोघ और मार्मिक वचन कहें हैं!

शैया पर लेटा हो, आसन पर बैठा हो, रास्ते में चलता हो, सब समय चित्त शांत हो। सब समय प्रतिक्रिया रहित मन हो और सदैव ध्यान रखे कि कहीं मोह न बनने पाये। इतना हो जाये बस सदा सुखी है और सदा मुक्त है।

यह निरन्तर का, सब समय का ध्यान है। इसी के लिए साहेब ने कहा है—"ऊठत बैठत कबहुं न छूटै, ऐसी तारी लागी।" और "ठाड़े बैठे सोये उतान, कहैं कबीर हम एक समान।" यह सरल बोली में कहा है। आपको इसे याद करने में भी सरल है। "शय्याऽऽसन-स्थोऽथ पथि व्रजन वा स्वस्थः परिक्षीणवितर्कजालः। संसारबीजक्षयमीक्षमाणः स्यान्नित्यमुक्तो अमृतभोग भागी।" इसको तो सबके लिए याद करना मुश्किल है और अर्थ लगाना भी मुश्किल है। लेकिन "ठाड़े बैठे सोये उतान, कहैं कबीर हम एक समान।" इसको याद करना सरल है और समझना भी सरल है। किसी भी स्थिति में हो एक समान समता को प्राप्त है और शांत है।

अपने को दुख से रहित करो, बहानेबाजी व्यर्थ है। लोग बहानेबाजी करते हैं और कहते हैं कि क्या करें हम तो फलाने के नाते दुखी हैं। ऐसे खराब लोग मिल गये कि हमें परेशान कर दिये इसलिए हम दुखी हैं। अरे अनाड़ी! फिर तो तुम्हें सब समय दुखी ही रहना है। खराब लोग कब नहीं मिलेंगे? अच्छे और बुरे लोग सब समय मिलते रहेंगे। निंदा और प्रशंसा जीवन में हमेशा होती रही और होती रहेगी। अपने को इतना मजबूत करो कि कोई घात-प्रतिघात चोट न कर सके। विवेक के अभेद्य किला में आप अपने को इतना प्रतिष्ठित कर दें कि संसार का किसी भी प्रकार का घात-प्रतिघात आपके मन पर असर न कर सके। आप सब समय आनन्दकन्द रहें।

सद्गुरु कबीर सब समय मग्न रहे। कितना विरोध आया लेकिन विरोधियों के प्रति भी उनके मन में कोई प्रतिक्रिया नहीं थी। सब समय हंसते रहे। जो पहुंचे हुए हैं उन सबकी दशा एक है।

मेरे प्रवचन का मुद्दा था कि अपने को सदैव दुख से रहित रखना ध्यान है। विशेष अवस्था में जो ध्यान आप लोग करते हैं उसका भी परिणाम यही होना चाहिए कि सब समय दुख से रहित रहो और यह विवेक के मार्जन से ही होगा।

पूर्ण शांति जीवन का फल है। पूरी शांति! पूरी शांति!! इसी के लिए ध्यान है, ज्ञान है, भक्ति है और वैराग्य है। इसी के लिए सभी साधनाएं हैं। अपने अहंकार को मारे बिना कोई भी हो, शांति पा नहीं सकता।

साधना में सफलता तभी होगी जब अपने अहंकार को मारा जाये। चित्त स्थिरता में सबसे बड़ी साधना है अपने अहंकार को मार देना। जिनकी अहंता-ममता मिट जाती है उनकी समाधि सब समय बनी रहती है। इस तथ्य को अपने ध्यान में रखना चाहिए।

सभी साधना की रीढ़ है आत्मज्ञान। साधना है आत्मा के लिए। आत्मा आप स्वयं हैं। आपके होने में कोई संदेह नहीं है। सारे दुखों को दूर करने की बात किसके लिए है, कौन दुखी है, कौन दुख से छुटकारा पाना चाहता है? स्वयं आत्मा। आप स्वयं हैं। जो कुछ सामने आये उसको अस्वीकार दें और साक्षी भाव में रहें। उदासीन रहें और जो भी संकल्प आयें उनका त्याग करते रहें। ❑

आत्मार्पण

रचयिता—श्री बालकृष्ण प्रसाद

श्रमाधारित जीवन जहां शास्त्र सम्मत बसर है,
हृदय हीन कायर नृशंसी में रखता न कोई कसर है।
एक भेद है व्याप्त सर्वत्र, जग जाहिर अनजान बने,
अन्त्य सत्य सूझता, आए जगती के हम मेहमान बने।
आस-प्यास पर दूध पीएं, इसी में जलांश मिलता है।
देवालयों में भी दीप अब नकली घी का जलता है।
बदला-बदला रूप यहां, चेहरों पर गुलाब खिलता है।
अपने तो सपने जैसे, हर चेहरे पर दोहरा नकाब मिलता है।
कहीं कहीं प्रवहन विमुख गंगा मुड़कर बहती है।
ऋतु वसंत की पानप पर पक्षिणी भी शायद यही कहती है।
राम बदल जाते हैं, श्याम बदल जाते हैं,
जमाने के बने-बनाए सब काम बदल जाते हैं।
अदृश्य देव से नेहाल करण, ताप सह करते सब पाप।
भूसायी गृहदेव जीवित दुख भोग, भाग्य भरोसे पड़े रहते माँ बाप।
जिस ने संताप सहकर निज हित में तुझे किया बड़ा,
किन्तु पुत्र के कुचक्र ने यातना दे, दे रहा उन्हें भी लड़खड़ा।
भ्रम भूल की फटी चादर का कोई रफूगार नहीं मिलता।
प्रयासरत हो दहुँ दिश अहर्निश रहता डोलता-हिलता।
देव-दनुज कोई कुछ कर सकता नहीं निज कर्त्तव्य के सिवा,
हाँ-हाँ रे! मृत जीवा, भले तू अमृत क्यों न पीवा।
सृजन के शुभोदय का रक्षक, बना है आज प्रत्यक्ष भक्षक।
जग-जीवन का दिगन्त, दीख पड़ता अन्त-वन्त।
आज समाज समहलता नहीं, खोजने पर भी मनुज मिलता नहीं।
कठिन पथ लाँघ कर कोई, चाहे कैलाश पर जाते,
निज मर्म जाने बिना, जगे ''तत्सत् शिव'' को जगाते।
भक्ति का नव-नव चलन, मुक्ति-भ्रम में उलझे जन-जन
हुजूम निकला कथित भेड़ियों का, सुनता कौन व्यथित गरेड़ियों का।
भ्रम जाल, विषद जंजाल में मनुज आपा खोया।
मृगतृष्णा तेज की मंदी पर सब खोया और रोना रोया।
यूगाश्वासन एक आशा होती है, कोई आम-खास दिशा नहीं।
है दूध कितना, कितना पानी यह भी सही पता नहीं।
भाई-भाई में टुट-फुट, दूर-दूर होती माध्यमी बात।
सुलगती रहती मन में आग, पनपता आन्तरिक विषाद।
जब भी होता दिल, दिल के करीब, रह जाता न कोई अमीर-गरीब।
समानता होती राष्ट्रहित की बात बड़ी,
सदगुरु-संगत की बिछ जाती दरी।
है भली विपदा गुरु स्मरण-सुमरन में सहायिका तू।
साक्षी, शुचि, सत्य स्नेही और निर्णायिका तू।
मनुज अवलोकता नित नव-नव सपना,
न जाने कभी वह हो भी जाए अपना।
आस-निराश की ऊहापोही से हृदयान्तराल में पहुंचते ठेस।
बदले रूप देख आत्मीयजनों के, दिलोद्यान में बचता न कुछ शेष।
अपने बिगड़े हाल पर खेद नहीं, अचरज होता।
व्यवहार आधार पर निज कर्म ही जीवन-सहचर होता।
निज तबाही में खुद की गवाही, शेष सब मेला है।
इस झूठ की नगरी की हर आहें, फेंका गया कोई ढेला है।
सम्मुख विकट स्थिति में भी, भिड़ जाना ही जीवन है।
उठना-गिरना पुनः सम्हलना आत्मनिष्ठ परिशीलन है।
लोगों के दिल चिर के देखो, मिलता अंकित नाम उसी का।
पीर पराये की सेवा में गमा दिया मस्त क्षण निज खुशी का।
मनु के मुल्क, बालक भरत के बूढ़े भारत की हो रही दुर्दशा।
हम दौड़ रहे धर्मांधक बन दर्जनों-दर्जनों दिशा।
विविधता में एकता, राष्ट्र-धर्म की विशेषता, देश है शूर-वीर का
भटका नहीं सकता हमें कोई ये घर है गौतम, नानक, कबीर का।
शाश्वत सत्य सिसक सकता, कभी हार नहीं सकता।
राष्ट्रीय स्वाभिमान, मानव धर्म के प्राण को कोई मार नहीं सकता।
देश हमारा सच्चा सादा, भोले-भाले, जन-मन-प्राण।
''जैसी करनी, वैसी भरनी'' यही सद्गुरु–गीता ज्ञान।

ध्यान आत्मा का भोजन है। जब ध्यान में बैठें तो दिमाग को शान्त और धीमा करें। पर जब आंख खुले तो हर काम ध्यान से करें। जब तक रहेगा ध्यान, कभी न होंगे बेभान।

—अज्ञात